भूमि अर्जन, पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन में उचित प्रतिकर (मुआवजा) और पारदर्शिता का अधिकार कानून 2013

नाम बड़े और दर्शन छोटे

सीमित वितरण हेतु

जनहित में

पॉपुलर एजूकेशन एण्ड एक्शन सेंटर (पीस)
ए–124/6, दूसरी मंजिल
कटवारिया सराय, नई दिल्ली–16

द्वारा प्रकाशित

दिसंबर, 2013

अधिनियम के पीछे छुपे वास्तविक लक्ष्य

- 'मुक्त व्यापार' एवं 'स्वच्छंद बाजार' के प्रति समर्पित दिशा में कदम।
- 'बाजार प्रेरित व केन्द्रित' आर्थिक माडल, सामाजिक मूल्यों व जनहित के मुकाबले मुनाफा और निवेश को ज्यादा महत्व।
- सांझा संपदाओं को बाजार के हाथों में सौंपना।
- कृषि, वन, जल, पशुपालन आधारित स्थानीय लोक व्यवस्थाओं को नष्ट करना व भारतीय कृषि प्रधान समाज को औद्योगिक समाज में बदलने का तीव्र प्रयास।
- अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों, विशेष तौर पर विश्व बैंक के नीतिगत निर्देशों का पालन करते हुए कारपोरेट्स, कम्पनियों, पूंजीपतियों, उद्योगपतियों, रीयल स्टेट इत्यादि के लिए ऐसी स्थितियां बनाना जिससे भूमि कब्जाने की उनकी गतिविधि में कोई बाधा उत्पन्न न हो।
- भूमि–अधिग्रहण तथा विस्थापन व पलायन को रोकना या कम करना नहीं बल्कि इसे तेज करना।
- क्रेता (कम्पनियों) तथा विक्रेता (भू–स्वामियों) के बीच सीधे सौदेबाजी की प्रक्रिया को प्रोत्साहन।
- बाजार के हित को सार्वजनिक हित में व्याख्या करके इसके मन चाहे उपयोग के लिए दरवाजे खोलना व इस आड़ में

कारपोरेट्स, कम्पनियों, पूंजीपतियों, उद्योगपतियों, रीयल स्टेट इत्यादि के मुनाफे के लिए भूमि–अधिग्रहण को वैध ठहराना।

- ज्यादा मुआवजे का झूठा प्रलोभन देकर किसानों को बाजार के हवाले करना तथा भूमि के बदले भूमि, उचित पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन व स्थायी आजीविका के किसी भी वायदे से मुकरना।
- न्यायिक प्रक्रिया का इस तरह का प्रावधान जिससे लोगों की उस तक पहुंच मुश्किल हो।
- प्रभावित लोगों में उन्हें न शामिल करना जो अपरोक्ष रूप से प्रभावित होने जा रहे हैं।
- संविधान की पांचवी अनुसूची में आदिवासी समाज को प्राप्त संरक्षण की अवहेलना कर के इन क्षेत्रों के संसाधनों को लूटना।
- उचित मुआवजा का अधिकार का दावा झूठा है – अनुसूची चार में वर्णित 13 जनविरोधी कानूनों के तहत अधिग्रहण, पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन की व्यवस्था जारी रहेगी।

1992 में वैश्वीकरण तथा उदारीकरण की प्रक्रिया शुरू होने के बाद पिछले दो दशकों में हमारे देश ने तथाकथित आर्थिक तरक्की की दौड़ में बने रहने के लिए छलांग तो लगा दी। मगर विकास की इस दौड़ में मुल्क की आधी से ज्यादा आबादी या तो पीछे रह गई या अभी भी इस तरक्की की कीमत चुका रही है। हमारे देश के कर्णधारों ने वैश्विक बाजार का नारा देकर जिस विकास के मॉडल को चुना, उस के लिए अर्थव्यवस्था को खोलना तथा अर्थव्यवस्था का तेजी से विकास निश्चित करने के लिए ढांचागत सुविधाओं का विकास तथा संसाधनों के दोहन की क्षमता बढ़ाना जरूरी था। इस प्रक्रिया को तेजी से आगे बढ़ाने के लिए तथा विश्व व्यापार संगठन की शर्तों के परिणाम स्वरूप कई कानूनों को बदलने की प्रक्रिया शुरू की गई। भूमि अर्जन, पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन में उचित प्रतिकर (मुआवजा) और पारदर्शिता का अधिकार कानून 2013 भी उसी प्रक्रिया का हिस्सा है। भारत, मुख्य रूप से एक कृषि प्रधान देश है। यहां जमीन और व्यक्ति की सामाजिक स्थिति के बीच एक मजबूत संबंध स्थापित है। यह तथ्य है कि भारत की आबादी का लगभग 70 प्रतिशत भाग अपनी आजीविका और रोजी–रोटी के लिए जमीन से जुड़े व्यवसायों, जंगलों, जलाशयों, समुद्र तटों तथा स्थानीय प्राकृतिक संसाधनों पर आश्रित है। पर्यावरण और वन मंत्रालय के आंकड़ों के अनुसार भारत की भूमि का लगभग 47 प्रतिशत कृषि के रूप में, वन के रूप में 22.6 प्रतिशत तथा 13.6 प्रतिशत गैर कृषि योग्य भूमि के रूप में प्रयोग किया जाता है। 1992 की भारत ग्रामीण विकास रिपोर्ट के अनुसार देश की लगभग आधी आबादी बिल्कुल या लगभग पूरी तरह से भूमिहीन थी। अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के बीच भूमिहीनता तेजी से बढ़ी है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन (एनएसएसओ) के (2003–2004) के आंकड़ों के अनुसार लगभग 42.63 प्रतिशत परिवारों के पास निवास के अलावा कोई भूमि नहीं है।

दूसरे शब्दों में देश की 60 प्रतिशत आबादी का देश की भूमि के केवल 5 प्रतिशत हिस्से पर अधिकार है, जबकि मात्र 10 प्रतिशत जनसंख्या का 55 फीसदी जमीन पर नियंत्रण है। देश भर में 27.5 करोड़ लोग अपनी आजीविका के लिए लघु वन उत्पादों पर निर्भर हैं। 1980–81 के बाद खनन के लिए जितने जंगलों की सफाई हुई उनमें से 70 प्रतिशत 1997 से 2007 के बीच किये गये हैं। अब घने या मध्यम स्तर तक घने जंगल भारत के 12 प्रतिशत से भी कम भू–भाग पर रह गये हैं। इतना ही क्षेत्रफल खुले जंगलों या झाड़ीदार जंगलों का है।

आज जब भोजन, जल, दवा तथा शिक्षा को भी ज्यादा से ज्यादा मुनाफा कमाने का जरिया बना लिया गया है तथा पूंजी की रक्षा के लिए परमानेण्ट एसेट्स के रूप में भूमि को सुरक्षित जरिया माना जा रहा है। ऐसे दौर में देशी–विदेशी पूंजीपतियों की ओर से भूमि की मांग बहुत ज्यादा बढ़ गई है। खनन क्षेत्रों के विस्तार के लिये, औद्योगिक गलियारों तथा पार्कों के लिए, विशाल ढांचागत परियोजनाओं के लिए, कृषि उद्योग तथा सट्टेबाजी पर आधारित रीयल एस्टेट के विकास के लिए भूमि की मांग बढ़ती जा रही है। इसके लिए जितनी भूमि की आवश्यकता पड़ेगी उसका अधिग्रहण करना आसान प्रक्रिया नहीं होगी। यह भी सच है कि भूमि को लेकर जगह–जगह स्थानीय समुदाय तथा सरकार के बीच टकराव हुए हैं तथा इसके साथ ही पिछले कुछ समय में भूमि अधिग्रहण के मुद्दे पर कंपनी/कारपोरेट तथा स्थानीय आदिवासी समुदायों के बीच हिंसक संघर्षों में भी तेजी आई है। स्थानीय समुदाय कंपनी/कारपोरेट द्वारा हिंसात्मक दमन का शिकार भी होता रहा है। भूमि अधिग्रहण मुद्दे पर लोगों के बढ़ते संघर्षों की वजह से सरकार इस नये कानून को लाने के लिए मजबूर हुई है। मगर इस नये विधेयक को लाने के पीछे सरकार का एकमात्र उद्देश्य है कि बड़ी–बड़ी कंपनियों द्वारा भूमि अधिग्रहण को वैधता प्रदान की जाये उनके द्वारा भूमि हथियाने की प्रक्रिया को आसान बनाया जाये तथा जन विरोध की वजह से भूमि अधिग्रहण प्रक्रिया के रुक जाने के खतरों को कम किया जाये। इसीलिए इस चुनावी माहौल में बाजार दर पर आधारित उचित मुआवजा देने तथा पारदर्शिता का अधिकार जैसे शब्दों के मोती पिरोकर यूपीए सरकार ने इस विधेयक को संसद में

तो पारित करा लिया है मगर इस विधेयक का आबादी के व्यापक हिस्से, आदिवासी समुदायों, किसानों, भूमिहीनों से कोई सरोकार नहीं है, क्योंकि इसका उद्देश्य भूमि अधिग्रहण तथा विस्थापन–पलायन रोकना या कम करना नहीं है बल्कि इसे तेज करना है तथा इसके साथ ही किसानों को मुआवजे का ज्यादा प्रलोभन देकर उन्हें बाजार के हवाले करना है। अंततः इस ''भूमि अर्जन, पुनर्वास और पुनर्व्यवस्थापन में उचित प्रतिकर (मुआवजा) और पारदर्शिता का अधिकार कानून 2013'' के बारे में यही कहा जा सकता है कि ''नाम बड़े और दर्शन छोटे।''

प्रस्तावना में व्यक्त मकसद

इस कानून के मकसद के बारे में प्रस्तावना में ही साफ शब्दों में लिखा गया है कि औद्योगिक विकास, जरूरी ढांचागत सुविधाओं का विकास व शहरीकरण के लिए, स्थानीय स्वशासन / ग्राम सभाओं से चर्चा कर के मानवीय, सहभागी, सूचित व पारदर्शी तरीके से भूमि का अधिग्रहण किया जाएगा, जिसमें भूमि मालिकों और प्रभावितों को कम से कम प्रभावित कर के न्यायपूर्ण व उचित मुआवजा दिया जाएगा। जबरन भूमि अधिग्रहण से प्रभावित भूमि मालिकों और अन्य प्रभावितों के पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन को इस तरह से किया जाएगा जिस से भूमि अर्जन के बाद उनकी सामाजिक व आर्थिक स्थिति में सुधार हो तथा वह विकास के हिस्सेदार बन सकें।

प्रस्तावना में व्यक्त मकसद से तीन बातें स्पष्ट होती हैं

1 औद्योगिक विकास, जरूरी ढांचागत सुविधाओं का विकास व शहरीकरण के लिए भूमि का अधिग्रहण किया जाना,
2 न्यायपूर्ण व उचित मुआवजा दिया जाने का लालच,
3 विस्थापितों के सामाजिक व आर्थिक स्थिति में सुधार व उन्हें विकास में हिस्सेदार बनाना।

तथाकथित विकास के लिए जबरन भूमि अधिग्रहण का अधिकार यह कानून सरकार को देता है। दूसरा अब सवाल यह उठता है कि सार्वजनिक हित का जो नजरिया आज तक प्रचारित था, क्या वह अब बदल गया है? औद्योगिक विकास, सार्वजनिक सुविधा व ढांचागत सुविधाओं का विकास व विस्तार तथा शहरीकरण जो अब निजी कम्पनियों द्वारा ही होना है, इसीलिए

निजी कम्पनियों व पब्लिक–प्राइवेट पार्टनरशिप (पीपीपी) परियोजनाओं को इस कानून में सार्वजनिक हित के उद्देश्य की परिभाषा में शामिल किया गया है।

दूसरी बात इस में यह कही गई कि अधिग्रहण में पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन की व्यवस्था, उचित मुआवजा और पारदर्शिता बरती जाएगी ताकि जिन से भूमि छीनी जा रही है उन को विकास में हिस्सेदार बनाया जाए। यह पूरा वक्तव्य झूठ और छल पर आधारित है।

आज भारतीय लोकतंत्र कल्याणकारी भूमिका से हटकर मुक्त बाजार व्यवस्था व पूंजी नियंत्रित शासन व्यवस्था में प्रवेश कर चुका है। ऐसे में जन कल्याणकारी नीतियां भी पैसों से नापी जानी तय है, इसी लिए 'उचित मुआवजे व पारदर्शिता का अधिकार' जैसे छदम शब्द को कानून के नाम के साथ जोड़ दिया और विस्थापितों व प्रभावितों को धन का प्रलोभन दिया जा रहा है।

जबकि भूमि के बदले भूमि, सतत आय व समाज की पीढ़ी दर पीढ़ी आजीविका के आधार को सुरक्षित करने तथा जिंदा रहने लायक पर्यावरणीय स्थितियों को बनाए रखने जैसे प्रश्नों पर कहीं कोई बहस व मंशा कहीं नहीं दिखती है।

हमारे संविधान में भारत को समाजवादी, धर्मनिर्पेक्ष, लोकतंत्रिक गणतंत्र घोषित किया है परन्तु वास्तव में आज की देश की व्यवस्था पूंजीवाद, सांप्रदायिक, सामंती कुलीनतंत्र बन कर रह गई हैं।

किसानों, भूमि मालिक व सांझा संम्पदाओं पर आश्रित समाज के भविष्य की सुरक्षा से जुड़े प्रश्न?

अगर भारत वास्तव में समाजवादी, धर्मनिर्पेक्ष, लोकतंत्रिक गणतंत्र है तो ऐसे में जबरन या छल से भूमि अधिग्रहण जैसे कानून बन ही नहीं सकते थे। संविधान के मुताबिक देश के जल, जंगल, जमीन–सांझा संपदाओं का मालिक भारत के लोग हैं, सरकार नहीं। सरकार तो सांझा संपदाओं की कस्टोडियन–संरक्षक मात्र है। ऐसे में क्या यह कानून संविधान

की मूल भावना के खिलाफ नहीं है? अंग्रेज तो साम्राज्यवादी विदेशी शासक थे, परन्तु आज तो देश में जनता का शासन है। यही संवैधानिक प्रस्थापना है, परन्तु आज वास्तविकता इस से काफी भिन्न हो गई है और एमिनेंट डॉ मेंन के सिद्धान्त को ही प्रस्थापित किया जा रहा है।

भूमि अधिग्रहण से प्रभावित भूमि मालिकों और अन्य प्रभावितों के पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन भूमि के बदले भूमि, सतत आय व समाज के पीढ़ी दर पीढ़ी आजीविका के आधार को सुरक्षित करने, सांस्कृतिक जुड़ाव तथा जिंदा रहने लायक पर्यावरणीय स्थितियों को बनाए रखने जैसे अहम प्रश्नों की भरपाई का समाधान होना चाहिए। केवल आर्थिक मुआवजा दे कर अधिग्रहण से होने वाले दर्द से पल्ला नहीं झाड़ा जा सकता। आज तक देश में कहीं भी देखने में नहीं आया कि विस्थापितों के सामाजिक व आर्थिक स्तर में सुधार हुआ है, परन्तु ऊंची पहुंच वाला एक हिस्सा जरूर लाभान्वित हुआ है। देश के अलग–अलग हिस्सों में पुनर्वास कालोनियां देखने से फासीवाद के दौर में यहूदियों के लिए बने घैटो जैसे बन्द क्षेत्र दिखते हैं और विस्थापित अपने आप को ठगे हुये, हीन व मजबूर महसूस करते दिखते हैं। बहुत सी पुनर्वास कालोनियों में लोग घटिया निर्माण, सुविधाओं के अभाव, खेती, पशुओं, जंगल, पानी के अभाव व सांस्कृतिक अलगाव के कारण उन में गये ही नहीं है। इस आबादी का एक बड़ा हिस्सा अपनी मूल जगह से न जाने कहां–कहां जिन्दा रहने के लिए चला गया, जबकि आजादी के बाद विकास के बुल्डोजर के कारण करोड़ों विस्थापित आज शहरों की झुग्गी झोंपड़ियों में बसने को मजबूर हुए हैं। इसलिए यह कहना बेईमानी ही है कि वे विकास के भागीदार बने हैं या बनाए जाऐंगे।

भूमि को ले कर जरूरी सवाल–

1. आजादी के 66 वर्ष में अभी तक दस करोड़ से भी ज्यादा लोग इस कानून की आड़ में विस्थापित किये जा चुके हैं, जिन का पुनर्वासन व पुनर्व्यवस्थापन अभी तक ठीक से नहीं हो पाया है। इस पर यह कानून खामोश है। विकास व लोक हित के नाम पर कुर्बान/विस्थापित की जा चुकी इतनी बड़ी आबादी से भारतीय लोकतंत्र की शीर्ष

संस्था– संसद को माफी मांगनी चाहिए थी। अच्छा यह होता अगर सरकार आजादी के बाद के सभी पुनर्वासन व पुनर्व्यवस्थापन के लंबित मामलों को पहले निपटाने का प्रबन्ध करते और उसके बाद भूमि के किसी नए कानून पर बात करती।

2. रेलवे, अन्य सरकारी व गैर सरकारी उद्योगों, औद्योगिक क्षेत्रों के नाम पर पहले ही जरूरत से ज्यादा भूमि कब्जाई गई है जो या तो खाली पड़ी है या उस पर मौज मस्ती व अन्य व्यवसायिक कार्य हो रहे हैं। लैन्ड सीलिंग एक्ट के तहत अभी बड़े भूपतियों से जमीनें सरकार को वापस ली जानी चाहिए थीं परन्तु उन जमीनों को आज तक नहीं छीना गया। ऐसी भूसंम्पतियों की पहचान हो और उसी पर उक्त विकास, उद्योग व व्यापार के कार्य पहले होने चाहिए।

3. भूमि सुधार कानून, जमींदारी विनाश अधिनियम, सीलिंग एक्ट, सी.एन.टी. एक्ट और एस.पी. टी. एक्ट जैसे कानूनों को सख्ती से लागू किया जाना चाहिए। आज भी आदिवासी, दलित, अल्पसंख्यक, छोटे एवं सीमांत किसानों से खेतिहर ज़मीन लेकर उद्योगपतियों व विनिर्माण के लिए देने के बड़े पैमाने पर कार्य जारी हैं। आज जमींदारी प्रथा नए आक्रामक रूप से पुनः स्थापित हो रही है और उद्योगपतियों ने बड़े पैमाने पर खेती व वन भूमि विकास के नाम पर हडप ली है। औद्योगिक विकास के नाम पर सीलिंग एक्ट को समाप्त करने के हो रहे प्रयास रोके जाने चाहिए और सीलिंग एक्ट लागू करके अतिरिक्त ज़मीन भूमिहीन, आदिवासी, दलित, अल्पसंख्यक, छोटे एवं सीमांत ज़रूरतमंदों किसानों को दी जानी चाहिए। बढ़ती बेरोज़गारी, घटते सकल कृषि उत्पाद और बढ़ती पलायन की दर को देखते हुए 'अनुपस्थित ज़मींदार' की कब्ज़े वाली भूमि को खेती के लिए इन्हीं लोगों को दिया जाना चाहिए। इस लिए भूमि के अधिग्रहण जैसे कानूनों से पहले उक्त कानूनों पर जमीनी स्तर पर अमल होना चाहिए।

4. किसान के लिए भूमि–अधिकार के कानूनी प्रावधान व कृषि भूमि की रक्षा व इसका समान बंटवारे का कार्य सबसे पहले किया जाना चाहिए। यह इसलिए भी वांछित है, ताकि खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित किया जा सके व देश का 80 प्रतिशत समाज जो कृषि, वन व जल संसाधनों पर

प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से निर्भर है, के लिए भविष्य में सतत आजीविका आधार व उत्पादक कार्य सुनिश्चित किया जा सके। क्योंकि प्रस्तावित औद्योगिक नीति भारत में 125 करोड़ की आबादी को रोजगार देने में कभी भी सक्षम नहीं हो सकती है।

5. कृषि भूमि व सकल भूमि उपयोग पर व्यवहारिक नीति बननी चाहिए। कृषि भूमि के संरक्षण के लिए भी वन भूमि की तरह उद्‌घोषित 33 प्रतिशत संरक्षण की परिकल्पना की जा सकती है। परन्तु ध्यान देने वाला तथ्य यह भी है कि भूमि उपयोग समय के साथ बदलेगा ही और इतिहास में बदलता भी रहा है। बदलाव किस के हक में हुआ है यह महत्वपूर्ण है। मान लिया जाए कि कुल उपलब्ध भूमि का 50 प्रतिशत हिस्सा कृषि के लिए, भूमि अधिकार सीमा (लैंड सीलिंग) के बिना सुरक्षित कर भी दिया जाए और कार्पोरेट खेती को रोका न जाए, तो ऐसे में यह संरक्षण जनता के खिलाफ ही होगा। अतः जरूरत इस बात की है कि भूमि की मिल्कियत केन्द्रीयकृत न हो कर देश की 80 प्रतिशत आबादी जो कृषि, वन, खनिज व जल संसाधनों पर प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से निर्भर है, के हाथ में सुरक्षित रहे।

लोक प्रयोजन या परलोक प्रयोजन?

इस विधेयक में जिस तरह से 'लोक' प्रयोजन को पारिभाषित किया गया है उससे तो यही लगता है कि इस विधेयक का 'लोक' से कोई संबंध ही नहीं है। बल्कि यह विधेयक 'लोक' को 'परलोक' पहुंचाने के प्रयोजन को पूरा करता दिखता है। सार्वजनिक हित के नाम पर जमीन हथियाने के सारे हथकंडे लोक प्रयोजन में जोड़ दिये गये हैं। उदारीकरण, वैश्वीकरण तथा खुले बाजार के इस दौर में जब पानी, स्वास्थ्य, शिक्षा, भोजन से बड़े कारपोरेट अपार मुनाफा कमाने की ताक में हैं और मुनाफा कमा भी रहे हैं इसलिए इन्हें आम लोगों के लिए मुहैया करवाना अब सरकार के एजेंडे में भी नहीं है। सरकार भी अब अपनी लोक कल्याणकारी भूमिका को लगभग पूरी तरह से त्याग चुकी है। सरकार का किसानों तथा कृषि से कोई सरोकार नहीं है। 1992 में सरकार द्वारा शुरू किये गये आर्थिक सुधारों के बाद 1995–2012 की समयावधि के अंदर कर्जों के बोझ से तंग आकर ढ़ाई लाख से ज्यादा किसान खुदकुशी कर चुके थे और आज भी खुदकुशी कर रहे हैं। हमारे अर्थशास्त्री प्रधानमंत्री इन किसानों की आत्महत्याओं पर पैकेज की घोषणा तो कर देते हैं मगर इन आत्महत्याओं पर ज्यादातर चुप्पी साधे रहते हैं। ऐसे समय में सरकार द्वारा लोक प्रयोजन की बात करना अपने आप में अश्लीलता से कम नहीं है।

संसद में पारित 'भूमि अर्जन, पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन' में उचित मुआवजा और पारदर्शिता का अधिकार कानून 2013 में परिभाषित लोक प्रयोजनः—

इस विधेयक की धारा 2(1) के अनुसार इस अधिनियम के भूमि अर्जन, मुआवजा, पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन से संबंधित उपबंध उस दशा में लागू होंगे, जब समुचित सरकार अपने स्वयं के उपयोग, अधिकार और नियंत्रण के लिए, जिसमें

पब्लिक सेक्टर उपक्रम तथा लोक प्रयोजन के लिए भूमि का अर्जन करती है, अर्थात्:—

(क) नौसेना, सेना, वायुसेना और संघ के सशस्त्र बलों से (जिसके अंतर्गत केन्द्रीय अर्द्धसैनिक बल भी हैं) संबंधित सामरिक उद्देश्यों के लिए या भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा या रक्षा अथवा राज्य पुलिस, जनसाधारण की सुरक्षा के लिए किसी महत्वपूर्ण कार्य के लिए; या

(ख) अवसंरचना परियोजनाओं के लिए जिसके अंतर्गत निम्नलिखित भी हैं, अर्थात्—

(i) भारत सरकार के आर्थिक कार्य विभाग (अवसंरचना अनुभाग) की तारीख 27 मार्च, 2012 की अधिसूचना संख्या 13/6/2009—आई.एन.एफ. में सूचीबद्ध सभी क्रियाकलाप या मदें, प्राइवेट अस्पतालों, प्राइवेट शिक्षा संस्थानों और प्राइवेट होटलों को छोड़कर;

(ii) कृषि प्रसंस्करण, कृषि में निवेशों को मुहैया करवाने के लिए, भण्डारगृह, शीतसंग्रहण सुविधाओं, कृषि और सहबद्ध क्रियाकलापों जैसे कि दुग्ध उद्योग, मत्स्य उद्योग के लिए विपणन अवसंरचना और मांस प्रसंस्करण से संबद्ध परियोजनाएं, जो समुचित सरकार द्वारा या किसी कृषि सहकारिता द्वारा या किसी कानून के अधीन स्थापित किसी संस्था द्वारा स्थापित की गई हो या उसके स्वामित्वाधीन हो;

(iii) औद्योगिक कोरिडोर अथवा खनन क्रियाकलाप, राष्ट्रीय विनिर्माण नीति में यथा अभिहित राष्ट्रीय विनिधान और विनिर्माण परिक्षेत्र के लिए परियोजना;

(iv) जल सिंचाई और जल संरक्षण अवसंरचना, स्वच्छता के लिए परियोजना;

(v) सरकार द्वारा प्रशासित, सरकार द्वारा सहायता प्राप्त शैक्षणिक और अनुसंधान स्कीमों या संस्थाओं के लिए परियोजना;

(vi) खेलों, स्वास्थ्य देखभाल, पर्यटन, परिवहन, अंतरिक्ष कार्यक्रम के लिए परियोजना;

(vii) कोई अवसंरचना सुविधा, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा संसद में ऐसी अधिसूचना रखे जाने के बाद इस संबंध में अधिसूचित की जाये;

(ग) परियोजना से प्रभावित कुटुम्बों की परियोजना के लिए;

(घ) ऐसे आय समूहों के लिए, जो समुचित सरकार द्वारा समय–समय पर विनिर्दिष्ट किए जाएं, गृह निर्माण की परियोजना के लिए;

(ङ्) ग्रामीण स्थलों या नगरीय क्षेत्रों में किसी स्थल के योजनाबद्ध विकास या सुधार के लिए अथवा ग्रामीण और नगरीय क्षेत्रों में दुर्बल वर्ग के लोगों के लिए आवासीय प्रयोजनों के लिए भूमि की व्यवस्था की परियोजना के लिए,

(च) निर्धन या भूमिहीन व्यक्तियों या प्राकृतिक आपदा से प्रभावित क्षेत्रों में निवास करने वाले व्यक्तियों या सरकार, किसी स्थानीय प्राधिकारी या राज्य के स्वामित्वाधीन या नियंत्रणाधीन किसी निगम द्वारा आरंभ की गई किसी स्कीम के क्रियान्वयन के कारण विस्थापित या प्रभावित हुए, व्यक्तियों के आवासीय प्रयोजनों की परियोजना के लिए।

इसके अलावा यह अधिनियम यह भी कहता है कि उपरोक्त वर्णित प्रयोजनों के अलावा 'ऐसे प्रयोजनों हेतु भूमि अर्जन सार्वजनिक उद्देश्य या लोक प्रयोजन की श्रेणी में आयेगा जिसके द्वारा लोगों का हित होता हो धारा 2 की उपधारा 2(क) पब्लिक–प्राइवेट पार्टनरशिप (पीपीपी) के तहत ऐसी परियोजनायें जो लोक प्रयोजन के लिए हों तथा धारा 2 की उपधारा 2(ख) प्राइवेट कंपनियों की लोक प्रयोजन हेतु परियोजनायें भी इसी कोटि में आयेंगी।

अब सवाल यह उठता है कि लोक प्रयोजन या सार्वजनिक उद्देश्य को क्या तथाकथित विकास की रोशनी में परिभाषित किया जाना जरूरी है। क्या सरकार ने लोक प्रयोजन को परिभाषित करते समय जनसंगठनों, जमीन पर कार्यरत बुद्धिजीवियों, कार्यकर्ताओं या विस्थापन का शिकार हो चुके लोगों या अपने अस्तित्व को बचाने की लड़ाई में लगे समुदायों से विचार–विमर्श किया? यह सवाल इसलिए भी महत्वपूर्ण हो जाता है कि लोक प्रयोजन को परिभाषित करते समय उस परियोजना के लिए जरूरी निम्नतम या अधिकतम भूमि की सीमा को छिपा कर रखा गया है। इस अधिनियम में कहीं भी स्पष्ट तौर पर इस बारे में कुछ नहीं कहा गया है कि लोक प्रयोजन की परियोजनाओं के लिए कितनी भूमि का अर्जन जरूरी है। पहले के मसौदे में कंपनी द्वारा ग्रामीण क्षेत्र में 100

एकड़ जमीन तथा शहरी क्षेत्र में 50 एकड़ जमीन खरीदने पर पुनर्वासन तथा पुनर्व्यवस्थापन लागू होने का प्रावधान था मगर अब भूमि के आकार की तय सीमा जब पुनर्वासन तथा पुनर्व्यवस्थान लागू होंगे उसे राज्य के विवेक पर छोड़ दिया गया है।

उदाहरण स्वरूप अगर हम राष्ट्रीय विनिधान और विनिर्माण क्षेत्र (नेशनल इन्वेस्टमेंट मैन्युफैक्चरिंग जोंस) (NIMZs) जिसे इस अधिनियम में लोक प्रयोजन में रखा गया है; की बात करें तो भारत सरकार की 2022 तक पांच और राष्ट्रीय विनिधान और विनिर्माण क्षेत्र स्थापित करने की योजना है। NIMZ (नेशनल इन्वेस्टमेंट एंड मैन्युफैक्चरिंग जोंस) का पहला चरण दिल्ली–मुंबई औद्योगिक कोरीडोर (डीएमआईसी) के समानांतर स्थापित होगा जो कि 6 राज्यों– हरियाणा, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र तथा गुजरात तक विस्तृत होगा। प्रत्येक जोन 5,000 हैक्टेयर भूमि से ज्यादा फैला होगा तथा इसमें एक या ज्यादा स्पेशल इकोनोमिक जोन (एसईजेड), औद्योगिक पार्क, वेयरहाउसिंग जोन, निर्यात आधारित यूनिट होंगे।

जिस दिल्ली–मुंबई इंडस्ट्रियल कोरीडोर (डीएमआईसी) के समानांतर इन जोन को बनाये जाने की योजना है। इस औद्योगिक गलियारे की कुल लंबाई 1483 किमी. है। 90 बिलियन यू.एस.डालर की इस महत्वाकांक्षी योजना को जापान सरकार की वित्तीय तथा तकनीकी मदद भी मिलेगी। इसके लिए जापान सरकार के साथ 2006 में एमओयू पर हस्ताक्षर किये जा चुके हैं। इस परियोजना में 200–250 वर्ग कि.मी. के नौ मेगा औद्योगिक क्षेत्र, उच्च गति की मालगाड़ी की रेल लाइन, तीन बंदरगाह, 6 हवाई अड्डे, दिल्ली तथा मुंबई को जोड़ने वाला 6 लाइन का एक्सप्रेस–वे तथा 4,000 मेगावाट का एक पावर प्लांट भी शामिल है। इस कोरीडोर के विकास से 18 करोड़ लोग, जो कि जनसंख्या का 14 प्रतिशत है प्रभावित होंगे।

इन दोनों परियोजनाओं से जिन्हें लोक प्रयोजन में परिभाषित किया गया है हम विकास की वह तस्वीर देख सकते हैं जिसमें

आम आदमी को विस्थापन, बेरोजगारी तथा भुखमरी के अलावा कुछ नहीं मिलेगा। इस अधिनियम के अनुसार इसके उपबंध कुछ अनिवार्य दशाओं में लागू नहीं होंगे या अगर लागू भी होंगे तो कुछ अनिवार्य संशोधनों सहित ही लागू होंगे (धारा 106, तथा अधिनियम की चौथी अनुसूची)।

भूमि अर्जन, पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन को विनियमित करने वाले अधिनियमों की सूची (धारा 105)–

1. प्राचीन स्मारक तथा पुरातत्वीय स्थल और अवशेष अधिनियम 1958 (1958 का 24)।
2. परमाणु ऊर्जा अधिनियम 1962 (1962 का 33)।
3. दामोदर घाटी अधिनियम 1948 (1948 का 14)।
4. भारतीय ट्राम अधिनियम1886 (1886 का 11)।
5. भूमि अर्जन खान अधिनियम 1885 (1885 का 18)।
6. भूमिगत रेल अधिनियम 1978 (1978 का 33)।
7. राष्ट्रीय राजमार्ग अधिनियम 1956 (1956 का 48)।
8. पैट्रोलियम तथा खनिज पाइप लाइन (भूमि में उपयोग के अधिकार का अर्जन) अधिनियम 1962 (1962 का 50)।
9. स्थावर संपत्ति अधिग्रहण और अर्जन अधिनियम 1952 (1952 का 30)।
10. विस्थापित व्यक्तियों का पुनर्व्यवस्थापन (भूमि अर्जन) अधिनियम 1948 (1948 का 60)।
11. कोयला धारक क्षेत्र अर्जन और विकास अधिनियम 1957 (1957 का 20)।
12. विद्युत अधिनियम 2003 (2003 का 36)।
13. रेल अधिनियम 1989 (1989 का 24)।

इन अधिनियमों के तहत भी भूमि अधिग्रहण जारी रहेगा, मगर इस विधेयक के मुआवजे तथा पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन संबंधी प्रावधान इन अधिनियमों पर लागू नहीं होंगे। सरकार का एक साल के अंदर अधिसूचना लाकर इस विधेयक के मुआवजे तथा पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन संबंधी प्रावधान इन 13 अधिनियमों पर लागू करने का प्रस्ताव है।

लोक प्रयोजनों या सार्वजनिक उद्देश्यों को देखने के बाद यह स्पष्ट है कि यह विधेयक भी भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया को

और तेज़ी से आगे बढ़ायेगा और यही इसका एकमात्र उद्देश्य भी है। विश्व व्यापार संगठन की प्रमुख शर्तों में से एक 'निजीकरण को बढ़ावा' देने की दिशा में तेजी से आगे बढ़ने के लिए यह विधेयक एक और सरकारी कदम है।

यह विधेयक भारत की आर्थिक नीति को और सरल, सहज बनाने की प्रक्रिया का हिस्सा है जिसका निर्धारण अंतर्राष्ट्रीय वित्त संस्थानों, कारपोरेट, बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा हो रहा है। इसमें और तेजी लाने के लिए तथा विकास के पहिये को और तेजी से घुमाने के लिए सरकार अपने ही बनाये हुए कानूनों तथा नागरिकों के संवैधानिक अधिकारों को खत्म करती जा रही है। उदाहरण के लिए 5,000 एकड़ में बनने वाले नेशनल इन्वेस्टमेंट एण्ड मैन्युफैक्चरिंग जोन जिनसे सरकार का दावा है 10 करोड़ अतिरिक्त नौकरियां पैदा होंगी, इनमें लेबर लॉ मान्य नहीं होगे, कंपनियों को अपने मजदूरों की संख्या कम या ज्यादा करने शिफ्ट के घंटों की अवधि तय करने तथा अस्थायी मजदूरों की संख्या जरूरत अनुसार कम या ज्यादा करने का अधिकार होगा। इससे स्पष्ट हो जाता है कि सरकार किसके प्रयोजनों को साध रही है 'लोक' के या 'कारपोरेट' के तथा लोक प्रयोजन या सार्वजनिक हित के नाम पर यह विधेयक किसे ध्यान में रख कर बनाया गया है।

इस विधेयक के अनुसार भूमि अर्जन, पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन प्रावधान तभी लागू होंगे जबः–

1. सरकार अपने इस्तेमाल, स्वामित्व तथा नियंत्रण के लिए भूमि अधिग्रहण करती है।
2. सरकार भूमि का अधिग्रहण करके उसे लोक प्रयोजन के लिए निजी कंपनियों को हस्तांतरित करती है।
3. सरकार पब्लिक–प्राइवेट भागेदारी परियोजनाओं के लिए भूमि अधिग्रहण करती है।

ऊपर लिखित 2 और 3 नम्बर बिंदुओं में एक बार लोक प्रयोजन निर्धारित होने के बाद बदले नहीं जा सकते। मगर ध्यान देने लायक बात ये है कि कंपनी द्वारा ग्रामीणों से सीधे जमीन खरीदने पर यह प्रावधान तभी लागू होंगे जब वह राज्य सरकार द्वारा निर्धारित सीमा क्षेत्र के बराबर हो।

इसके साथ ही इस कानून में निजी कंपनियों के लिए भूमि अर्जन की दशा में प्रभावित परिवारों में कम से कम अस्सी प्रतिशत परिवारों की पूर्व सहमति तथा पब्लिक–प्राइवेट भागेदारी परियोजनाओं के लिए भूमि अर्जन की दशा में प्रभावित परिवारों में कम से कम 70 प्रतिशत परिवारों की पूर्व सहमति जरूरी है।

इस सहमति के खेल में 'प्रभावित परिवारों' की 80 या 70 प्रतिशत सहमति प्राप्त करने का जो सम्मोहन जाल बुना गया है निसंदेह वो काबिले–तारीफ है। अगर इस विधेयक में 'प्रभावित कुटुंबों' विधेयक में यही भाषा है, की परिभाषा देखी जाये तो किसी का भी दिल बाग–बाग हो सकता है कि इन परिभाषित 'प्रभावित परिवारों' की राय भी इस सहमति में दर्ज की जायेगी। असलियत में 80 या 70 प्रतिशत सहमति के इस खेल में भू–स्वामी यानि जिसके पास जमीन है उन्हीं से सहमति प्राप्त की जायेगी। इस भूमि विधेयक में परिभाषित 'प्रभावित कुटुंब' जो अर्जित की जाने वाली भूमि के स्वामी नहीं है मगर इस भूमि पर आश्रित है उनकी राय/सहमति सरकार के लिए कोई मायने नहीं रखती। 25,000 रुपये एक बारगी अदा करके इनसे पल्ला झाड़ लिया जायेगा, किन्तु यह भी तब मिलेगा जब यह परिवार साबित कर सकें कि इस भूमि पर भूमि अर्जन होने के समय से, पिछले तीन वर्षों से वह आश्रित हैं।

इस भूमि विधेयक में परिभाषित 'प्रभावित परिवार' यानि कृषि श्रमिक, फलोपयोग अधिकार वाले पट्टाधारी, बटाईदार या वे जिनकी जीविका का मुख्य स्रोत खत्म हो गया है ये कहां जायेंगे?

इससे बड़ा ऐतिहासिक मजाक 'ऐतिहासिक अन्याय' को रोकने के संदर्भ में नहीं हुआ है मगर 'कारपोरेट' द्वारा दी गयी 'दवा' या की गई 'दुआ' के कारण ये लोकतांत्रिक सरकार ये मजाक अपने ही नागरिकों के साथ कर रही है।

यहां ध्यान देने की महत्वपूर्ण बात यह कि पहले निजी कंपनियों द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में 100 एकड़ तथा शहरी क्षेत्रों में 50 एकड़ भूमि अधिग्रहण करने पर पुनर्व्यवस्थापन प्रावधान लागू होने की व्यवस्था थी, मगर अब इसे संशोधित कर भूमि

के आकार की सीमा को, जब यह प्रावधान लागू होंगे उसे राज्य के विवेक पर छोड़ दिया गया है। यानि अब राज्य सरकार यह तय करेंगी कि निजी कंपनियों के लिए अधिग्रहित की गई भूमि के किस आकार पर पुनर्वासन तथा पुनर्व्यवस्थापन संबंधी प्रावधान लागू होंगे। सरकार द्वारा इस विधेयक में किया गया यह संशोधन सरकार की मंशा को दर्शाता है कि सही तरीके से पुनर्वासन तथा पुनर्व्यवस्थापन करने में वह कितनी गंभीर है तथा इस विधेयक के द्वारा वह किसके निजी हितों को साध रही है।

इस विधेयक की धारा 3 'प्रभावितों' को परिभाषित करती है। 'प्रभावित क्षेत्र' के बारे में यह अधिनियम कहता है 'ऐसा क्षेत्र जो सरकार द्वारा भूमि अर्जन के लिए अधिसूचित किया जाये'।

इस अधिनियम में 'प्रभावित परिवारों' को इस प्रकार परिभाषित किया गया हैः–

- ऐसा कोई परिवार, जिसकी भूमि या अन्य अचल संपत्ति का अर्जन किया गया है;
- ऐसा कोई परिवार, जो किसी भूमि का स्वामी नहीं है किंतु ऐसे परिवार का कोई सदस्य जो कृषि श्रमिक, पट्टाधारी; जिसके अंतर्गत उसे फलोपयोग अधिकार प्राप्त हो, बटाईदार या कारीगर अथवा वे हो सकते हैं जो प्रभावित क्षेत्र में भूमि के अर्जन से तीन वर्ष तक कार्य कर रहे हों, जिनकी जीविका का मुख्य स्रोत भूमि के अर्जन से प्रभावित हो गया है;
- ऐसी अनुसूचित जनजातियां और अन्य पारंपरिक वन निवासी जिन्होंने भूमि के अर्जन के कारण अनुसूचित जनजाति और अन्य परम्परागत वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम 2006 के अधीन मान्यता प्राप्त अपने किसी भी वन्य अधिकार को खो दिया है;
- ऐसा कोई परिवार, जिसकी जीविका का मुख्य स्रोत, भूमि के अर्जन से तीन वर्ष पूर्व तक वनों या जलराशियों पर निर्भर है और इसके अंतर्गत वन उपज बटोरने वाले, आखेटक, मछुआरा जन समूह और केवट भी हैं और ऐसी जीविका भूमि के अर्जन के कारण प्रभावित हुई है;
- ऐसे परिवार का कोई भी सदस्य, जिसे राज्य सरकार या

केन्द्रीय सरकार द्वारा अपनी (स्कीमों) योजनाओं में से किसी के अधीन भूमि सौंपी गई है और ऐसी भूमि अर्जन के अधीन है;

- ऐसा कोई परिवार, जो नगरीय क्षेत्रों में भूमि के अर्जन के पूर्व के पूर्ववर्ती तीन वर्ष या उससे अधिक तक किसी भूमि में निवास करता है या जिसकी जीविका का मुख्य स्रोत, भूमि के अर्जन से तीन वर्ष पूर्व तक ऐसी भूमि के अर्जन से प्रभावित हुआ है।

इस अधिनियम में 'प्रभावित क्षेत्र' तथा 'प्रभावितों' की परिभाषा बहुत ही सीमित रखी गयी है। हमारे सामने कई ऐसे अनुभव हैं जो यह बताते हैं कि इस परिभाषा का कोई वैज्ञानिक तथा व्यवहारिक आधार नहीं है। हमारे सामने केरल में कोका–कोला कंपनी के प्लांट का उदाहरण है जिसके भू–जल के असीमित दोहन से आस–पास के गांवों का भू–जल स्तर प्रभावित होकर लगातार नीचे जा रहा था जिसके कारण इन गांवों के ग्रामीणों की खेती भी प्रभावित हो रही थी, क्योंकि उन्हें पर्याप्त मात्रा में सिंचाई के लिये पानी उपलब्ध नहीं हो पा रहा था। अंततः एक लंबी कानूनी लड़ाई के बाद इस प्लांट को न्यायालय के निर्देश के बाद बंद करना पड़ा। ऐसे कई उदाहरण हैं जिसमें 'प्रभावित क्षेत्र' के बाहर रहने वाले परिवार अपरोक्ष रूप से प्रभावित हो रहे हैं मगर उन्हें इस श्रेणी में नहीं रखा गया है।

इस अधिनियम में 'कृषि भूमि' को भी परिभाषित किया गया है। ''कृषि भूमि'' का मतलब ऐसी भूमि से है जिसका इस्तेमाल निम्न उद्देश्यों के लिए किया जाता हो–

- कृषि या उद्यान भूमि;
- दुग्ध उद्योग, मुर्गी पालन उद्योग, मछली पालन, रेशम उत्पादन, बीज की खेती, पशुधन का प्रजनन या नर्सरी में उगने वाली औषधीय जड़ी–बूटियां;
- फसलों, वृक्षों, घास का बढ़ना या उद्यान उत्पाद; और
- पशुओं के चरागाह के लिए उपयोग में लाई भूमि।

पर्दे के पीछे ''पारदर्शिता''

इस विधेयक के पहले ही पैरा में भूमि अर्जन को सूचनाबद्ध और पारदर्शी प्रक्रिया से तथा संविधान के अधीन स्थापित स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं और ग्रामसभाओं के परामर्श से सुनिश्चित करने की बात की गई है। सरकार द्वारा यह भी दावा किया जा रहा है कि इस पूरी प्रक्रिया में विशेषकर ग्रामसभाओं तथा पंचायती राज संस्थाओं की बेहतर भूमिका होगी।

इस विधेयक की धारा–4(1) में कहा गया है कि जब कभी सरकार का किसी लोक प्रयोजन के लिए भूमि अर्जन का आशय हो, वह प्रभावित क्षेत्र में ग्रामीण स्तर पर या वार्ड स्तर पर यथास्थिति, पंचायत, नगरपालिका या नगरनिगम के साथ परामर्श करेगी और उनके परामर्श से ऐसे तरीके तथा ऐसी तारीख से जो उस सरकार द्वारा अधिसूचना द्वारा विर्निर्दिष्ट (उल्लिखित) की जाए, सामाजिक प्रभाव निर्धारण अध्ययन करायेगी। तथा;

सामाजिक प्रभाव निर्धारण अध्ययन के प्रारंभ होने संबंधी सरकार द्वारा जारी की गई अधिसूचना, यथास्थिति, पंयाचत, नगरपालिका या नगरनिगम को तथा जिला कलक्टर, उपखंड मजिस्ट्रेट के और तहसील कार्यालयों में स्थानीय भाषा में उपलब्ध कराई जायेगी और प्रभावित क्षेत्रों में ऐसी रीति से, जो निर्धारित की जाये, प्रकाशित की जायेगी तथा सरकार की वेबसाइट पर अपलोड की जायेगी।

परंतु सरकार यह सुनिश्चित करेगी कि सामाजिक प्रभाव निर्धारण अध्ययन कराने के प्रक्रम पर यथास्थिति, पंचायत, ग्रामसभा, नगरपालिका या नगरनिगम के प्रतिनिधि को पर्याप्त प्रतिनिधित्व दिया जाए।

इन प्रावधानों को पढ़ने के बाद यहां सवाल यह उठता है कि अगर स्थानीय स्वशासन की संस्थायें और ग्रामसभायें सामाजिक

प्रभाव निर्धारण अध्ययन कराने से ही मना कर दें तथा अपनी जमीन न देने का निर्णय कर लें उस स्थिति में क्या होगा? किस का निर्णय मान्य होगा? ग्राम सभाओं का या सरकार का? सरकार ग्राम सभाओं के निर्णय का आदर करेगी या पारदर्षिता का ढिंढोरा पीटते हुए भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया को आगे बढ़ायेगी।

सरकार सामाजिक प्रभाव निर्धारण अध्ययन को उसके प्रारंभ की तारीख से छह मास की अवधि के भीतर पूरा कराया जाना सुनिश्चित करेगी तथा इसे जनसाधारण को उपलब्ध करायेगी।

सामाजिक प्रभाव निर्धारण अध्ययन के अंतर्गत इस अधिनियम में निम्नलिखित मामले आएंगे:–

(क) इस बात का निर्धारण कि क्या प्रस्तावित अर्जन से लोक प्रयोजन पूरा होता है;

(ख) प्रभावित परिवारों का और उनमें से उन परिवारों की संख्या का प्राक्कलन (आकलन) जिनके विस्थापित होने की संभावना है;

(ग) ऐसी सार्वजनिक और प्राइवेट भूमि, मकानों, व्यवस्थापनों (बस्तियों) और अन्य संपत्तियों की सीमा, जिनके प्रस्तावित अर्जन से प्रभावित होने की संभावना है;

(घ) इस बात का अध्ययन कि क्या अर्जन के लिए प्रस्तावित भूमि की 'सीमा' उस परियोजना के लिए पूर्णतया यथार्थ ''न्यूनतम सीमा'' की ही है;

(ड़) इस बात का अध्ययन कि क्या किसी वैकल्पिक स्थान पर भूमि का अर्जन किये जाने पर विचार किया गया है और उसे साध्य (व्यवहारिक) नहीं पाया गया है;

(च) परियोजना के सामाजिक प्रभावों और उनको ठीक करने की प्रकृति और खर्च तथा इन खर्चों का परियोजना के समग्र खर्च पर परियोजना के फायदों की तुलना में प्रभावों के अध्ययन।

इसके अलावा अन्य बातों जैसे: सामुदायिक संपत्तियों, ढांचागत तथा मूलभूत सुविधाओं पर पड़ने वाले प्रभावों की बात भी की गई है।

दरअसल ''सामाजिक प्रभाव'' मानवीय जनसंख्या के साथ

किसी पब्लिक या निजी क्रियाकलाप के परिणाम होते हैं जो उनके जिंदगी जीने, काम करने, खेलने, एक दूसरे के साथ मानवीय संबंध जोड़ने, अपनी जरूरतों को पूरा करने के जुगाड़ करने तथा इस समाज के सदस्य होने के नाते अपनी जिम्मेदारी निभाने, इन सभी को बदल देते हैं। इस में सांस्कृतिक प्रभाव के साथ–साथ सामान्य आचरण, मूल्य तथा आस्था भी शामिल है। वास्तव में सामाजिक प्रभाव निर्धारण में इन सब की ओर ध्यान नही दिया है। परियोजना के कारण मानवीय संबंधों पर पड़ने वाले प्रभाव जैसेः–

- स्थानीय समुदाय को बांध कर रखने वाले ताने–बाने का टूटना।
- एक–दूसरे पर निर्भर होकर जिंदगी जीने की व्यवस्था का टुकड़े–टुकड़े हो जाना।
- स्थानीय परिवेश की उस प्रक्रिया का जिसके द्वारा व्यक्ति के मस्तिष्क में ज्ञान और बोध का विकास होता है, बाधित हो जाना।

सामाजिक प्रभाव निर्धारण अध्ययन में इन बातों को बिल्कुल जगह नहीं मिली है। यह अध्ययन अपने आप में एक ढोंग की तरह लगता है और है भी; क्योंकि सरकार को समाज–समुदाय के ताने बाने – उनको बांध कर रखने वाली व्यवस्थाओं को बचाने में कोई रुचि नहीं है। इसके नुकसान की भरपाई करने का सरकार के पास एक ही तरीका है– पुनर्व्यवस्थापन तथा मुआवजा। पंचायती राज संस्थाओं तथा ग्राम सभाओं की बेहतर भूमिका का ढिंढोरा पीटने वाले इस विधेयक में यह कहीं स्पष्ट नहीं किया गया है कि इस 'सामाजिक प्रभाव निर्धारण अध्ययन' में क्या–क्या बिंदु शामिल हो सकते हें? इस बारे में भी उनसे विचार–विमर्श किया जायेगा? क्या यह बिंदु तय करते हुए उनकी राय को जगह दी जायेगी या प्रतीकात्मक तौर पर ही उनकी भागेदारी की रस्म अदायगी कर दी जायेगी।

वैसे इस विधेयक की धारा–5 के अनुसार जब कभी सामाजिक प्रभाव निर्धारण तैयार कराया जाना अपेक्षित हो, तो सरकार लोक सुनवाई के लिए तारीख, समय और स्थान के बारे में पर्याप्त प्रचार करने के पश्चात प्रभावित परिवारों की राय सामाजिक प्रभाव निर्धारण रिपोर्ट में लिखित रूप में शामिल

करने के लिए प्रभावित क्षेत्र में लोक सुनवाई का आयोजन निश्चित करेगी। सरकारी लोक या जनसुनवाई के कई रूप हमारे सामने हैं जिसमें सत्ता, ताकत, भाषा, हथियारों के बल पर अपने मन मुताबिक जनसुनवाई कर ली जाती है।

सामाजिक प्रभाव निर्धारण रिपोर्ट का विशेषज्ञ समूह द्वारा मूल्यांकन करने की बात भी इस विधेयक में की गई है। इस विशेषज्ञ समूह का गठन सरकार करेगी। इस विशेषज्ञ समूह में निम्नलिखित लोग सदस्य होंगेः–

- दो गैर–सरकारी सामाजिक विज्ञानी;
- यथास्थिति, पंचायत, ग्राम सभा, नगरपालिका या नगर निगम के दो प्रतिनिधि।
- पुनर्व्यवस्थापन से संबंधित विषय में एक तकनीकी विशेषज्ञ।

सरकार विशेषज्ञ समूह के सदस्यों में से एक व्यक्ति को इस समूह का अध्यक्ष मनोनीत करेगी। अगर यह विशेषज्ञ समूह सामाजिक प्रभाव अध्ययन रिपोर्ट का मूल्यांकन करने के बाद यह राय देता है किः–

- परियोजना से कोई लोक प्रयोजन पूरा होगा; और
- संभावित फायदे सामाजिक खर्च और प्रतिकूल सामाजिक प्रभावों की तुलना में बहुत अधिक है, तो यह अपने गठन की तारीख से दो मास के भीतर इस बारे में सिफारिश करेगा कि क्या अर्जित किये जाने के लिए प्रस्तावित भूमि की सीमा उस परियोजना के लिए आवश्यक पूर्णतया यथार्थ न्यूनतम सीमा तक है और इससे कम विस्थापित किये जाने संबंधी कोई अन्य विकल्प नहीं है।

अगर विशेषज्ञ समूह की राय है किः–

- परियोजना से कोई लोक प्रयोजन पूरा नहीं होता है; या
- परियोजना के सामाजिक खर्च और प्रतिकूल सामाजिक प्रभाव की तुलना में संभावित फायदे अधिक नहीं हैं; तो यह विशेषज्ञ समूह के गठन की तारीख से दो मास के भीतर यह सिफारिश करेगा कि परियोजना का तुरंत परित्याग कर दिया जाये और उसके लिए भूमि का अर्जन करने के लिए कोई कदम नहीं उठाया जाये।

इस प्रावधान के बारे में ग्रुप आफ मिनिस्टर (मंत्रियों के समूह)

के कई सदस्यों की राय थी कि अ–निर्वाचित लोगों का समूह अधिग्रहण की प्रक्रिया जारी रहनी चाहिए या नहीं; इस बारे में निर्णायक आदेश नहीं दे सकता। परिणाम स्वरूप इसमें संशोधन कर सरकार को इस विशेषज्ञ समूह की राय या निर्णय को अस्वीकार कर देने की शक्ति दे दी गई। इस विधेयक के जरिये पारदर्शिता, पंचायत राज संस्थाओं तथा ग्राम सभाओं की बेहतर भूमिका के सरकारी दावे की पोल खुल जाती है। इससे स्पष्ट है कि इस प्रक्रिया में इनकी भागेदारी केवल प्रतीकात्मक रूप से ही रहेगी।

इस विशेषज्ञ समूह के गठन की क्या प्रक्रिया होगी? इस बारे में इस विधेयक में कोई स्पष्टता नहीं हैं पारदर्शिता का अधिकार जिंदाबाद! यह तो स्पष्ट है कि इसका गठन सरकार करेगी, इसलिए यह अंदाजा लगाना मुश्किल नहीं है कि इसमें किस तरह के लोग होंगे और इसकी संभावित राय भी क्या होगी। बाकी इस प्रावधान में संशोधन के बाद इस विशेषज्ञ समूह की राय का अब कोई मतलब ही नहीं है। यह एक लोकतांत्रिक देश की 'अ'– लोकतांत्रिक व्यवस्था का अच्छा नमूना है।

ग्राम सभा की बेहतर भूमिका का एक और उदाहरण जो कि पुनर्वासन तथा पुनर्व्यवस्थापन के मामले से जुड़ा हुआ है। धारा–16(5) के अनुसार जब प्रशासक द्वारा पुनर्वासन तथा पुनर्व्यवस्थापन स्कीम तैयार कर ली जायेगी तो प्रभावित क्षेत्र में व्यापक प्रचार–प्रसार के बाद लोक सुनवाई की जायेगी। किसी प्रभावित क्षेत्र में एक से अधिक ग्राम सभा या नगरपालिका शामिल हैं और उस ग्राम सभा या नगरपालिका की पच्चीस प्रतिशत से अधिक भूमि का अधिग्रहण किया जा रहा हो तो ऐसी प्रत्येक ग्राम सभा या नगरपालिका में लोक सुनवाई की जायेगी। मगर उस ग्राम सभा या नगरपालिका का क्या होगा, जिनकी 25 प्रतिशत से कम जमीन जा रही है? क्या उन्हें बेहतर पुनर्वासन तथा पुनर्व्यवस्थापन में अपनी बात रखने का अधिकार नहीं हैं इस बारे में यह विधेयक में खामोश है।

खाद्य सुरक्षा की चिंता

इस विधेयक के अध्याय–3 में धारा–10 (1 से 4) तक खाद्य सुरक्षा की रक्षा की बात की गई है। वैसे यह अपने आप में 'विरोधाभास' है कि भूमि हथियाने के कानून में खाद्य सुरक्षा की बात की जा रही है। धारा–10 (1) के अनुसार सिंचित बहु–फसली भूमि' का अर्जन नहीं किया जायेगा, वहीं धारा–10 (2) के अनुसार ''ऐसी भूमि का इस शर्त के अधीन रहते हुए अर्जन किया जा सकेगा, कि ऐसा आपवादिक परिस्थितियों में प्रमाण्य अंतिम, उपाय के रूप में किया जा रहा हो'', ऐसी कौन सी परिस्थितियां हैं जिसमें 'सिंचित बहुफसली भूमि' का अर्जन किया जा सकता है वो स्पष्ट नहीं है। मगर यह स्पष्ट है कि हमारी सरकार खाद्य सुरक्षा को लेकर कितनी 'चिंतित' है। धारा–10 (2) आगे कहती है कि सिंचित बहुफसली भूमि का अर्जन किसी जिले या राज्य में सभी परियोजनाओं के लिए किसी भी दशा में निर्धारित सीमा से अधिक नहीं किया जायेगा। परंतु यह सीमा क्या होगी? कितनी 'सिंचित बहुफसली भूमि' का अधिग्रहण किया जा सकता है वो स्पष्ट नहीं है। पहले मसौदे में 5 प्रतिशत सीमा थी, मगर अब 'स्टेंडिंग कमेटी' ने इसमें संशोधन कर इस सीमा को राज्य के विवेक पर छोड़ दिया है। इसके पीछे यह तर्क दिया गया है; क्योंकि राज्य अपने क्षेत्र के बारे में ज्यादा अच्छी तरह जानते हैं और भूमि राज्य से जुड़ा हुआ मुद्दा है। इसलिए यह 'सिंचित बहुफसली भूमि' की सीमा क्या होगी? उन पर ही छोड़ दिया जाये। एक विवेकशील सरकार के विवेक का फैसला जिसकी कीमत हम सब चुकायेंगे। इसी प्रकार स्टेंडिंग कमेटी ने संशोधन करके भूमि की निजी खरीद की सीमा कितनी होगी? यह तय करने का अधिकार भी राज्य पर छोड़ दिया है। जब इस तय सीमा (जिसके बारे में पता नहीं है) से ज्यादा भूमि की निजी खरीद की जायेगी तब पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन संबंधी प्रावधान लागू होंगे। धारा–10 (3) कहती है जब कभी बहुफसली सिंचित भूमि का अर्जन किया जायेगा तब खेती योग्य बंजर भूमि के समान क्षेत्र को कृषि के प्रयोजनों के लिए

विकसित किया जायेगा या अर्जित की गयी भूमि के मूल्य के बराबर रकम खाद्य सुरक्षा बढ़ाने के लिए सरकार के पास जमा कराई जायेगी। ऐसे उदाहरण अभी तक देखने को नहीं मिले हैं जब सरकार ने कृषि के लिए बंजर भूमि को विकसित किया हो, इसलिए यहां भी 'रकम' कैश का प्रावधान जोड़ दिया गया है। वैसे खाद्य सुरक्षा को लेकर सरकार कितनी 'गंभीर' है वह 'खाद्य सुरक्षा बिल' को देखकर ही मालूम हो जाता है। इस कानून में भी ''डायरेक्ट कैश ट्रांसफर'' की बात की गई है। कृषि भूमि का अर्जन करते जाओ और 'खाद्य सुरक्षा' के नाम पर 'कैश' पाते जाओ। धारा–10 (4) कहती है ऐसे किसी मामले में, जो उपधारा (1) के अंतर्गत नहीं आता है, भूमि का अर्जन ऐसे किसी जिले या राज्य में सभी परियोजनाओं के लिए किसी भी दशा में कुल मिलाकर उस जिले या राज्य के कुल शुद्ध बुआई क्षेत्र की उस सीमा से अधिक नहीं होगा, जो सरकार द्वारा अधिसूचित की जायेगी। आगे कहा गया है कि इस धारा के उपबंध ऐसी परियोजनाओं में लागू नहीं होंगे जो दीर्घकालीन प्रकृति की है, जैसे रेल, राजमार्गों, प्रमुख जिला सड़कें, सिंचाई नहरें, विद्युत लाइनें आदि। 'खाद्य सुरक्षा' जिंदाबाद ! अगर सरकार की नीयत खाद्य सुरक्षा को लेकर सही है तो पूरे देश में कृषि भूमि की सीमा को तय क्यों नहीं कर देती। साथ ही सरकार को यह भी सख्त प्रावधान बना देना चाहिए कि निर्धारित कृषि भूमि में कोई भी भूमि अधिग्रहण नहीं होगा।

जबरन भूमि अधिग्रहण रोकने का 'दावा'

यूपीए सरकार का दावा है कि 'भूमि अर्जन, पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन में उचित मुआवजा और पारदर्शिता का अधिकार' विधेयक 2013 जबरन भूमि अधिग्रहण को कम करेगा। साथ ही सरकार का यह भी दावा है कि यह गरीबों के साथ किये गये 'ऐतिहासिक अन्याय' को भी कम करेगा तथा झारखंड, ओडिशा, छत्तीसगढ़ जैसे खनिज समृद्ध राज्यों में नक्सलवाद का मुकाबला इस विधेयक के माध्यम से किया जा सकेगा। सरकार का यह दावा कितना खोखला है, यह इसी से स्पष्ट है कि 'भूमि अर्जन खान अधिनियम (1985), कोयला धारक क्षेत्र अर्जन और विकास अधिनियम (1957), राष्ट्रीय राजमार्ग अधिनियम (1956), दामोदर घाटी निगम अधिनियम (1948) समेत 9 अन्य ऐसे कानून हैं जिन पर यह भूमि विधेयक लागू नहीं होगा।

'ऐतिहासिक अन्याय' को कम करने या जबरन भूमि अधिग्रहण को रोकने का दावा अपने आप में कितना हास्यास्प्रद है यह झारखंड के एक तथ्यात्मक आंकड़े से स्पष्ट हो जाता है कि इन केंद्रीय कानूनों के तहत जिन पर यह विधेयक लागू नहीं होगा 20,000 एकड़ भूमि का अधिग्रहण किया गया है जो कि अधिग्रहित भूमि का लगभग 85 से 90 प्रतिशत है।

4,000 एकड़ भूमि का अधिग्रहण पब्लिक प्राइवेट भागेदारी परियोजनाओं तथा राज्य की परियोजनाओं के लिए किया गया है। सिर्फ इन परियोजनाओं पर ही यह भूमि विधेयक लागू होगा। अर्थशास्त्री डा. रमेश शरण ने 2009 में अपने एक पेपर में रेखांकित किया है कि झारखंड में 1951 से 1995 के बीच औद्योगिक और खनन परियोजनाओं से 3.34 लाख से भी ज्यादा लोग विस्थापित हुए थे।

अभी हाल ही में 8 सितम्बर 2013 को दिल्ली में भूमि विधेयक पर

बोलते हुए ग्रामीण विकास मंत्री जयराम रमेश ने झारखंड के हजारीबाग, केरेदारी गांव (जिसमें 50 वर्षीय किसान की पुलिस फायरिंग में मौके पर ही मौत हो गयी थी तथा तीन अन्य किसान फायरिंग में घायल हो गये थे) में पुलिस द्वारा फायरिंग की घटना को पब्लिक सेक्टर द्वारा जबरन भूमिग्रहण के उदाहरण के रूप में रखते हुए कहा कि यह माओवादी क्षेत्रों में विवाद का बदतर रूप है। बड़ी हैरानी की बात है कि 23 जुलाई 2013 की झारखंड की इस घटना का उल्लेख करते हुए हमारे माननीय मंत्री जी शायद यह भूल जाते हैं कि एनटीपीसी द्वारा किया जा रहा यह भूमि अधिग्रहण कोयला धारक क्षेत्र अर्जन और विकास अधिनियम (1957) के तहत किया जा रहा है जहां यह भूमि विधेयक लागू नहीं होगा। नेशनल थर्मल पॉवर कॉरपोरेशन (एनटीपीसी) द्वारा अपनी इस कोयला खनन परियोजना के बारे में राजस्व विभाग को दिये गये एक आंकड़े के अनुसार 82 प्रतिशत यानि 5729.36 एकड़ भूमि कोयला धारक क्षेत्र अर्जन और विकास अधिनियम (1957) के तहत तथा शेष 1255 एकड़ भूमि अधिग्रहण कानून (1894) के तहत अधिग्रहित हैं अब इससे यह सवाल पैदा होता है कि क्या एक ही परियोजना से प्रभावित क्षेत्रों के लिए सहमति तथा पुनर्व्यवस्थापन के अलग नियम लागू होंगे क्या ऐसे किसान जिनकी जमीन दो परियोजनाओं में आ रही है तथा जहां दो अलग कानून लागू हो रहे हैं भिन्न मात्रा में मुआवजा स्वीकार करेंगे?

इस भूमि विधेयक को जादू की ऐसी छड़ी के रूप में प्रचारित किया जा रहा है जिससे विस्थापितों के दुख दर्द भी कम हो जायेंगे।

एक तरफ इस विधेयक में प्रभावित परिवारों की सहमति का प्रावधान रखा गया है वहीं दूसरी तरफ सार्वजनिक क्षेत्र के निगमों को इससे बाहर रखा गया है। मगर इस विधेयक की धारा 106 (3) कहती है कि केन्द्रीय सरकार इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख से एक वर्ष के भीतर अधिसूचना द्वारा यह निर्देश देगी कि अनुसूची 1 के अनुसार मुआवजे के अवधारण और अनुसूची 2 और अनूसूची 3 में विनिर्दिष्ट पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन से संबंधित इस अधिनियम का कोई उपबंध प्रभावित परिवारों को फायदाकारी होने के कारण

अनुसूची 4 में विनिर्दिष्ट अधिनियमों के अधीन भूमि अर्जन के मामलों में लागू होगा। मगर यह संसद की इच्छा पर ही निर्भर होगा, सरकार को इस निर्णय पर सोच विचार करने के लिए एक वर्ष का लंबा इंतजार क्यों करना पड़ेगा, यह समझ से बाहर है।

उचित मुआवजे और पारदर्शिता का एक और नमूना यह विधेयक पेश करता है, पहले इस भूमि विधेयक के मसौदे में सिंचाई परियोजनाओं के कारण विस्थापित होने वाले परिवारों के लिए भूमि के बदले भूमि देने का प्रावधान था। इस प्रावधान से उन हजारों विस्थापित परिवारों के मन में आशा की एक किरण जागी थी जो इन सिंचाई परियोजनाओं की वजह से बेघर हुए थे, खासकर तब जब मुआवजा एवं पुनर्वासन के मामलों में यह विधेयक पुरानी तारीख से लागू होना था। लोकसभा द्वारा इस विधेयक को पारित (मंजूरी) किये जाने तक यह प्रावधान इस विधेयक में शामिल था, मगर राज्यसभा में अंतिम समय में किये गये संशोधनों में यह प्रावधान गायब हो गया। पारदर्शिता की रोशनी से सराबोर इस विधेयक में यह महत्वपूर्ण प्रावधान किसके हितों की भेंट चढ़ गया, आखिर किसके इशारे पर भूमि के बदले भूमि प्रावधान को हटा लिया गया, इस बारे में यह विधेयक चुप है। पारदर्शिता का नारा लगाने वाले हमारे ग्रामीण विकास मंत्री माननीय जयराम रमेश ने लोकसभा में इस विधेयक के पारित होने के बाद कहा कि भूमि के बदले भूमि के प्रावधान को हटाने के लिए मध्य प्रदेश सरकार ने दबाव डाला था।

सिंचाई परियोजनाओं के संबंध में इस विधेयक में दो संशोधन किये गये हैंः—

- अगर पर्यावरणीय प्रभाव निर्धारण किया जा चुका है तो सामाजिक प्रभाव निर्धारण प्रक्रिया लागू नहीं होगी।
- विस्थापित परिवारों को या तो जमीन या मुआवजा, दोनों में से एक दिया जायेगा, जमीन भी तभी दी जायेगी जब वह उपलब्ध होगी। वैसे यह विधेयक संसद में पक्ष ओर विपक्ष के बीच मिटती दूरी का एक और पुख्ता उदाहरण है। और साथ ही यह ये भी दर्शाता है कि हमारे राजनैतिक दल और नेता आम आदमी के सरोकारों के प्रति कितने चिंतित हैं।

अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों तथा पांचवीं, छठी अनुसूची के क्षेत्रों के बारे में विशेष प्रावधान

इस विधेयक के अध्याय 5 की धारा 41(1) के अनुसार जहां तक संभव हो भूमि का कोई भी अर्जन अनुसूचित क्षेत्रों में नहीं किया जायेगा। वहीं धारा 41(2) के अनुसार ऐसा अर्जन केवल प्रदर्शनीय अंतिम उपाय के रूप में किया जायेगा। धारा 41(3) यह भी कहती है कि अनुसूचित क्षेत्रों में किसी भी भूमि अर्जन या अन्य संक्रामण (अपनों से दूर करने) की दशा में संविधान की पांचवी अनुसूची के अधीन के अनुसूचित क्षेत्रों में संबंधित ग्राम सभा या पंचायतों या स्वायत्त जिला परिषदों की पूर्व सहमति, सभी प्रकार के भूमि अर्जनों, जिसमें अत्यावश्यकता का अर्जन भी शामिल है; सभी मामलों में इस विधेयक या किसी केन्द्रीय या राज्य अधिनियम के तहत कोई अधिसूचना जारी करने के पूर्व समुचित स्तर पर अभिप्राप्त की जायेगी। परंतु पंचायतों और स्वायत्त जिला परिषदों की सहमति उन मामलों में अभिप्राप्त की जायेगी, जहां ग्राम सभा अस्तित्व में नहीं है या उसका गठन नहीं किया गया है।

- किसी अपेक्षक निकाय की ओर से भूमि का अर्जन किये जाने संबंधी ऐसी किसी परियोजना की दशा में जिसमें अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों के परिवारों का अस्वैच्छिक विस्थापन शामिल है, एक विकास योजना का ऐसा निर्धारित प्रारूप तैयार किया जायेगा, इसमें भूमि संबंधी उन (शोध्य) प्राप्त अधिकारों का जिन्हें सुलझाया नहीं गया है, उन्हें सुलझाने (परिनिर्धारण) तथा भूमि अर्जन सहित एक विशेष अभियान का जिम्मा लेते हुए अन्य संक्रामित भूमि पर अनुसूचित जनजातियों और साथ ही अनुसूचित जातियों के हक को बहाल करने संबंधी

प्रक्रिया, ब्यौरे सहित तैयार की जायेगी।

- विकास योजना में गैर वन्य भूमि पर पांच वर्ष की अवधि के भीतर वैकल्पिक ईंधन, चारे और गैर काष्ठ (नान टिम्बर) उपज संसाधनो का विकास करने के लिए कार्यक्रम।
- भूमि अर्जित किये जाने की दशा में प्राप्त होने वाले मुआवजे की कम से कम एक तिहाई का प्रभावित परिवारों को पहली किशत के रूप में भुगतान तथा शेष राशि का भूमि पर कब्जा करने के बाद भुगतान किया जायेगा।
- विस्थापित होने वाले अनुसूचित जनजातियों के परिवारों को उसी अनुसूचित क्षेत्र में एक ही ब्लाक में सघनता से बसाने में वरीयता दी जायेगी, जिससे कि वह अपनी जातीय, भाषागत तथा सांस्कृतिक पहचान बनाये रख सकें।
- ऐसे पुनर्वासित क्षेत्रों को जिनमें मुख्य रूप से अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लोग निवास करते हैं, उस सीमा तक, जो सरकार द्वारा निश्चित की जाए, सामुदायिक और सामाजिक गतिविधियों के लिए निःशुल्क भूमि मिलेगी।
- प्रभावित अनुसूचित जनजातियों, अन्य पारंपरिक वन्य निवासियों और अनुसूचित जाति के उन परिवारों को, जिनको प्रभावित क्षेत्र में नदी या तालाब या बांध में मछली पकड़ने के अधिकार प्राप्त हैं, सिंचाई या जल परियोजनाओं के जलाशय क्षेत्र में मछली पकड़ने के अधिकार दिये जायेंगे।
- जहां अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के प्रभावित लोगों को जिले के बाहर पुनर्वासित किया जाता है, वहां उन्हें पचास हजार रुपए की एक बारगी हकदारी के साथ अतिरिक्त 25 प्रतिशत पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन फायदे प्रदान किये जायेंगे जिन्हें वे धन के रूप में पाने का हकदार है।
- विस्थापित जन जातियों के लोग यदि पांचवीं और छठी अनुसूची के क्षेत्र के बाहर भी बसाये जाते हैं तो भी उन्हें आरक्षण तथा इस अधिनियम के सभी कानूनी रक्षोपाय, हकदारियां और फायदे प्रदान किये जाएंगे। धारा

42(1)(2)।

- जहां सामुदायिक अधिकारों को अनुसूचित जनजाति और अन्य परंपरागत वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम 2006 के उपबंधों के अधीन तय किया जा चुका है, वहां उनको धनीय राशि में परिमाणित किया जायेगा तथा ऐसे संबद्ध व्यक्ति को, जिसे भूमि के अर्जन के कारण विस्थापित किया गया है, ऐसे सामुदायिक अधिकार में उसके हिस्से के अनुपात का भुगतान किया जायेगा। धारा 42(3)।

पहली नजर में तो यह प्रावधान बहुत ही आदर्शात्मक और आकर्षक लगते हैं। लेकिन इससे पहले भी इस तरह के कानून सरकारें बना चुकी हैं। उदाहरण के लिये झारखंड में बिरसा आंदोलन के बाद बना छोटानागपुर टेनेंसी एक्ट जो कि झारखंड के 24 में से 16 जिलों में आदिवासी भूमि की रक्षा तथा आदिवासी भूमि को गैरआदिवासी को बेचने से रोकने के मकसद के लिये बनाया गया था।

मगर 1996 में इस एक्ट में संशोधन द्वारा खनन तथा उद्योग के लिए आदिवासी भूमि के इस्तेमाल की मंजूरी दे दी गई। यह प्रावधान आज भी इस भूमि विधेयक के अधीन लगातार चल रहा है। ऐसे ही पेसा कानून 1996 का प्रावधान अनुसूचित क्षेत्रों में विकास परियोजनाओं के लिए भूमि अधिग्रहण से पहले ग्राम सभा के साथ विचार विमर्श को मंजूरी देता था। किन्तु झारखंड पंचायत राज एक्ट 2001 में इसे शामिल नहीं किया गया जिसके कारण पब्लिक या निजी अधिग्रहण में ग्राम सभा की प्रभावशाली भूमिका नहीं रही, यह परिस्थिति अभी भी इस भूमि विधेयक में वैसी की वैसी बनी हुई है।

इन दोनों कानूनों की भावनाओं से बहुत पहले से खेला जा रहा है और सरकार ने इस विधेयक में भी इस खेल को बरकरार रखा है। एक तरफ यह विधेयक वन अधिकारों की बात करता है और दूसरी तरफ 'अंतिम उपाय' के नाम पर उन्हीं अधिकारों की छीनने की बात भी करता हैं वन, पहाड़, नदियां, खनिज इन्हें दुबारा नहीं बनाया जा सकता, यह सब जानते हैं। इसके साथ ही कि पहाड़, जंगलों, नदियों की, अनुसूचित जनजातियों (आदिवासियों) की नजरों में क्या अहमियत है, आदिवासियों का

इनके साथ क्या रिश्ता है यह समझना किसी के लिए मुश्किल नहीं है। मगर सरकार शायद यह नहीं समझती या तथाकथित विकास के मोह में समझना नहीं चाहती। इस विधेयक में 'विकास योजना' के नाम पर विस्थापित होने वाली अनुसूचित जातियों–जनजातियों के लिए पांच वर्ष में 'वन्य उपज' संसाधनों का विकास करने की बात की गई है जो कि समझ से बाहर है। अगर सरकार वाकई इनके वन संसाधनों, इनकी जातीय, भाषीय तथा सांस्कृतिक पहचान बनाये रखने में गंभीर होती तो इनके विस्थापन की बात सोचती भी नहीं। वन, पहाड़, भाषा, संस्कृति इनको विकसित होने में सैकड़ों–हजारों साल लगते हैं। मगर सरकार/कारपोरेट को इन सब से कोई मतलब नहीं है। देश के विकास के नाम पर तथा बेतहाशा मुनाफा कमाने के लिए वह इनकी बलि चढ़ाने को तैयार हैं। वैसे भी हमारे प्रधानमंत्री कह चुके हैं देश के विकास के लिए किसी न किसी को बलिदान तो देना ही पड़ेगा।

यह विधेयक उन्हीं की इच्छा पूरी करता दिख रहा है 'मुआवजा दो' और आदिवासियों, दलित वंचितों की भाषाई, सांस्कृतिक पहचान के साथ–साथ उनकी भी बलि चढ़ा दो।

उचित मुआवजे का फार्मुला तथा पुनर्वास और पुनर्व्यवस्थापन का खेल

बाजार द्वारा प्रेरित और केन्द्रित तथा कारपोरेट द्वारा संचालित विकास के माडल में 'भूमि' को भी मुनाफा कमाने का जरिया बना लिया गया है। विकास के इस माडल में 'पैसा' ही महत्वपूर्ण है, सामूहिकता, भाईचारा, संस्कृति इसकी कीमत भी बाजार में कारपोरेट्स ने तय कर दी है। इस भूमि विधेयक में भी यही सिद्धांत अपनाया गया है, उचित मुआवजे के ढोल, नगाड़ों को पीटकर जीवन मूल्यों, सामूहिकता, संस्कृति, प्राकृतिक संसाधनों की कीमत लगा दी गई है। मुनाफे की रेलमपेल में गजब धक्कमपेल है, पूरा कॉरपोरेट जगत पावर प्लांट, हाइड्रो पावर प्लांट, मिनी हाइड्रो पावर प्लांट, सीमेंट प्लांट, इस्पात प्लांट बनाने तथा बाक्साइट, आयरन ओर, सोना, तांबा, कोयला, तेल के खनन में कूद चुका है। इसलिए:–

इस विधेयक की धारा 26(1) 'बाजार मूल्य' पर उचित मुआवजा देने की बात करती हैं इसमें ग्रामीण क्षेत्रों में बाजार मूल्य का चौगुना तथा शहरी क्षेत्रों में बाजार मूल्य का दुगना मुआवजे के भुगतान करने का प्रावधान है।

भूमि के बाजार मूल्य का निर्धारण करने के मापदंड

- उस क्षेत्र में जहां भूमि स्थित है बिक्री के करार के रजिस्ट्रेशन के लिए भारतीय स्टांप अधिनियम 1899 में विनिर्दिष्ट बाजार मूल्य, यदि कोई हो; या
- उस वर्ष के जिसमें भूमि का अर्जन किया जाना है, ठीक पहले के तीन वर्षों के दौरान निकटवर्ती गांव या निकटवर्ती सामीप्य क्षेत्र में उसी प्रकार के क्षेत्र के लिए रजिस्टर्ड (बिक्री करार) सेल डीड में जिनमें अधिकतम विक्रय कीमत दर्ज है। ऐसे बिक्री करारों की कुल संख्या के आधे को विचार में रखकर औसत विक्रय कीमत तय की जायेगी; या
- इनमें से जो भी अधिक हो।

- इसके अलावा मुआवजे निर्धारित करते हुए संपत्ति (इमारत, पेड़, कुएं, फसल आदि) के मूल्य को भी जमीन के मूल्य में जोड़ने की बात की गई है। यह मूल्य निर्धारित करने के लिए सरकार (कलक्टर), इंजीनियर या ऐसे ही किसी "विशेषज्ञों" की मदद लेगी।

कुल मुआवजा निर्धारित होने के बाद उसके बराबर अनुग्रह राशि (तोषण) अतिरिक्त दी जायेगी फिर इस कुल राशि को 2 से गुणा कर दिया जायेगा।

बाजार मूल्य निर्धारित करने का यह तरीका जितना सीधा दिखता है दरअसल उतना है नहीं, सरकार ने इसमें एक फार्मुला और सेट कर दिया है। मतलब यह कि शहरी क्षेत्र से हम जैसे–जैसे ग्रामीण क्षेत्रों की तरफ जायेंगे, यह गुणात्मक घटक वैसे–वैसे ही 1 से 2 की तरफ बढ़ेगा।

यह दरें कैसे सुनिश्चित होंगी, यह राज्य सरकारों पर छोड़ दिया गया है।

ग्रामीण क्षेत्रों की दशा में वे कारक जिनके द्वारा बाजार मूल्य गुणित किया जाना हैः–

परियोजना की दूरी के आधार पर कि.मी. में	गुणात्मक कारक (जिसके आधार पर मुआवजा तय होगा, की दर)
0–10	1.00
10–20	1.20
20–30	1.40
30–40	1.80
40–50	2.00

इस तालिका से हम समझ सकते हैं कि भू–स्वामियों को उनकी भूमि अर्जन होने की स्थिति में मिलने वाले मुआवजे की दर कैसे तय होगी। दरअसल सरकार उचित मुआवजे तथा ग्रामीण क्षेत्रों में चौगुने मुआवजे का लगातार ढिंढोरा पीट रही है। जैसे प्रभावित क्षेत्र, भले ही वह ग्रामीण क्षेत्र में आता है परन्तु शहर से उस ग्रामीण क्षेत्र की दूरी 10 कि.मी. से कम है तो ऐसी स्थिति में गुणात्मक कारक 1 ही रहेगा। अगर यह दूरी 40–50 किमी. हो

जाती हे तो गुणात्मक कारक 2 हो जायेगा। यह भी राज्य सरकार ही तय करेगी। मतलब गणना करके जो बाजार मूल्य निर्धारित किया गया है, उस रकम का इस गुणात्मक कारक 2 से गुणा करके प्रभावित भू–स्वामी को मुआवजा दिया जायेगा।

नगरीकरण, औद्योगिकीकरण तथा जीडीपी बढ़ाये रखने को आतुर हमारी सरकार ने 'भूमि' के बाजार मूल्य को तय करने के लिए यह अजब–गजब फार्मूला निकाला है।

- यदि भूमि का शहरीकरण के लिए अर्जन किया जाता है तो विकसित भूमि का 20 प्रतिशत भाग आरक्षित रखा जायेगा और भूमि परियोजना से प्रभावित परिवारों को उनकी अर्जित भूमि के क्षेत्र के अनुपात में और अर्जन की लागत तथा विकास के खर्च के बराबर कीमत पर भूमि देने का प्रस्ताव दिया जायेगा अगर परियोजना से प्रभावित परिवार इस प्रस्ताव का लाभ उठाना चाहता है तो जो भूमि अर्जन प्रतिकर (मुआवजा) पैकेज उसे दिया जाना है उसमें से समतुल्य राशि की कटौती की जायेगी।
- कंपनी जिसके लिए भूमि अर्जित की गई है मुआवजे की राशि के 25 प्रतिशत हिस्से के भुगतान का प्रस्ताव कर सकती है। अगर परियोजना प्रभावित परिवार इस प्रस्ताव का लाभ उठाना चाहता है तो जो भूमि अर्जन प्रतिकर (मुआवजा) पैकेज उसे दिया जाना है उसमें से समतुल्य राशि की कटौती की जायेगी।
- अगर अधिग्रहित की गई भूमि किसी और को ऊंची कीमत के लिए बेच दी जाती है तो उस लाभ का 40 प्रतिशत मूल्य भू–मालिकों के बीच में बांटा जायेगा।

विस्थापित होने की दशा में:–

- ऐसे प्रत्येक परिवार को जो अर्जित भूमि से विस्थापित हुआ है जीवन निर्वाह के लिए 1 वर्ष तक तीन हजार रुपये प्रतिमाह भत्ता दिया जायेगा; या
- अगर परियोजना से नौकरियों का सृजन होता है तो प्रभावित परिवार के एक सदस्य को नौकरी; या
- पांच लाख रुपये का एक ही बार में भुगतान; या
- प्रत्येक परिवार को बीस वर्ष तक दो हजार रुपये प्रतिमाह का भुगतान।

इस कानून का अध्याय 6, 7 तथा 8 पुनर्वासन तथा पुनर्व्यवस्थापन के बारे में बात करता है।

धारा–43(1) के अनुसार जब सरकार इस बात से संतुष्ट हो जाये कि भूमि के अर्जन के कारण व्यक्तियों का गैर–स्वैच्छिक विस्थापन होने की संभावना है तो वहां राज्य सरकार अधिसूचना द्वारा उस परियोजना के लिए संयुक्त कलक्टर या अपर कलक्टर या उप–कलक्टर के पद जैसे किसी अधिकारी या राजस्व विभाग के समतुल्य पदधारियों को पुनर्वासन तथा पुनर्व्यवस्थापन प्रशासक के रूप में नियुक्त करेगी। इसके अलावा इस अधिनियम के तहत प्रभावित परिवारों के पुनर्वासन तथा पुनर्व्यवस्थापन के लिए सरकार के आयुक्त या सचिव की पंक्ति के किसी अधिकारी को नियुक्त करेगी, जिसे पुनर्वासन तथा पुनर्व्यवस्थापन आयुक्त कहा जायेगा।

धारा–45(1) के अनुसार जहां अर्जन किए जाने के लिए प्रस्तावित भूमि एक सौ एकड़ के बराबर या उससे अधिक है, वहां सरकार पुनर्वासन तथा पुनर्व्यवस्थापन स्कीम के कार्यान्वयन की प्रगति की निगरानी और उसकी समीक्षा करने तथा ग्रामीण क्षेत्रों में ग्राम सभा और शहरी क्षेत्रों में नगरपालिका के परामर्श से कार्यान्वयन के पश्चात सामाजिक संपरीक्षा (सोशल आडिट) करने के लिए कलक्टर की अध्यक्षता में पुनर्वासन तथा पुनर्व्यवस्थापन समिति का गठन करेगी।

इस समिति में सरकार के अधिकारियों के अतिरिक्त निम्नलिखित सदस्य होंगे–

(क) प्रभावित क्षेत्र में निवास करने वाली स्त्रियों की एक प्रतिनिधि;

(ख) प्रभावित क्षेत्र में निवास करने वाले अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों में से प्रत्येक का एक प्रतिनिधि;

(ग) क्षेत्र में कार्य कर रहे किसी स्वैच्छिक संगठन का एक प्रतिनिधि;

(घ) किसी राष्ट्रीयकृत बैंक का एक प्रतिनिधि;

(ड़) परियोजना का भूमि अर्जन अधिकारी;

(च) प्रभावित क्षेत्र में स्थित पंचायतों या नगरपालिकाओं के अध्यक्ष या उनके प्रत्याशी;

(छ) जिला योजना समिति का अध्यक्ष या उसका प्रत्याशी;

(ज) संबंधित क्षेत्र का संसद सदस्य और विधानसभा का सदस्य;

(झ) अपेक्षक निकाय का एक प्रतिनधि; और

(ञ) सदस्य–संयोजक के रूप में पुनर्वासन तथा पुनर्व्यवस्थापन प्रशासक।

यहां ध्यान देने की बात है कि इस समिति का गठन तभी होगा जब कम से कम एक सौ एकड़ भूमि का अधिग्रहण हो। अगर भूमि अधिग्रहण 90 या 95 एकड़ का है तो समिति का गठन नहीं होगा।

अब सवाल यह उठता है कि सोशल आडिट में क्या होगा? कौन–कौन से बिंदु होंगे, यह इस कानून में स्पष्ट नहीं है। दूसरा पुनर्वासन तथा पुनर्व्यवस्थापन समिति के गठन की क्या प्रक्रिया होगी? इसके सदस्य सरकार कैसे चुनेंगे? क्योंकि कलक्टर इस समिति का अध्यक्ष होगा, क्या सीधे ही वह इन सदस्यों को चुन लेगा या वाकई कोई पारदर्शी प्रक्रिया को अपनाया जायेगा, जिसका सरकार दावा कर रही है। इस समिति की क्या शक्तियां होंगी? क्या सरकार इस समिति द्वारा दिये गये सुझावों या सिफारिशों को मानेगी या रद्दी की टोकरी में फेंक देगी?

धारा–48 राष्ट्रीय पुनर्वासन तथा पुनर्व्यवस्थापन मानीटरी समिति की बात करती है। इसके अनुसार 'जब कभी आवश्यक हो', तो राष्ट्रीय या अंतरराज्यिक परियोजनाओं के लिए पुनर्वासन तथा पुनर्व्यवस्थापन स्कीमों या योजनाओं के कार्यान्वयन की समीक्षा तथा मानीटरी के लिए एक राष्ट्रीय समिति का गठन करेगी। इसका मतलब है यह 'आवश्यकता' कब और क्यों पैदा होगी, यह सरकार ही तय करेगी, तो फिर यह राष्ट्रीय पुनर्वासन तथा पुनर्व्यवस्थापन मानीटरी समिति के गठन का मतलब ही क्या है। इस समिति में केंद्रीय सरकार और राज्य सरकारों के विभागों के प्रतिनिधियों के अलावा सुसंगत क्षेत्रों से प्रख्यात विशेषज्ञ भी शामिल होंगे। इस कानून में ऐसे ही पुनर्वासन तथा पुनर्व्यवस्थापन के लिए राज्य मानीटरी समिति के गठन का भी प्रावधान है।

इस कानून की धारा–52(1) के अनुसार सरकार भूमि अर्जन, मुआवजा, पुनर्वासन तथा पुनर्व्यवस्थापन से संबंधित विवादों का शीघ्र निपटारा कराने के लिए अधिसूचना द्वारा, "पुनर्वासन तथा पुनर्व्यवस्थापन प्राधिकरण" नामक एक या अधिक प्राधिकरणों की, इस अधिनियम द्वारा या उसके अधीन उसे प्रदत्त अधिकारिता, शक्तियों और प्राधिकार का प्रयोग करने के लिए स्थापना करेगी।

पारदर्शिता, ग्राम स्वशासन तथा लोकहित की बात करने वाले इस

कानून में इस बात का पूरा ध्यान रखा गया है कि आदिवासी, दलित, वंचित वर्ग को कहीं भी आसानी से न्याय न मिले। क्योंकि इस कानून में यह व्यवस्था भी कर दी गई है कि उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय को छोड़कर कोई भी सिविल न्यायालय भूमि अर्जन से संबंधित ऐसे किसी विवाद को ग्रहण करने का अधिकारी नहीं है जो इस अधिनियम द्वारा सशक्त कलक्टर या प्राधिकरण के अधीन है।

वास्तव में देखा जाये तो यह विधेयक सिर्फ 'सरकार' की बात करता है जैसे इस विधेयक में ऐसी भूमि जिसका अधिग्रहण के बाद कोई उपयोग नहीं हुआ है उसको 'सरकारी भूमि बैंक' या उनके मौलिक भू–मालिकों को वापस लौटाने का प्रावधान है। किन्तु यह निर्णय सरकार ही करेगी, भूमि के मामले में स्वाभाविक है सरकार का निर्णय इस भूमि को भूमि बैंक में शामिल करने का ही होगा। भूमि हड़पने के इस कारपोरेट द्वारा प्रायोजित सरकारी महायज्ञ में आहुति 'उन्हीं लोगों की पड़ेगी जिनके लिए यह विकास किया जाने का दावा किया जा रहा है। यह कानून भूमि हड़पने की पूरी प्रक्रिया को 'वैधता' का जामा पहनाने की कोशिश मात्र है। इस कानून को भूमि अर्जन खान अधिनियम 1885, राष्ट्रीय राजमार्ग अधिनियम 1956, कोयला धारक क्षेत्र अर्जन और विकास अधिनियम 1957 समेत उन सभी 13 कानूनों के साथ जोड़कर देखने की आवश्यकता है जो भूमि हथियाने का मुख्य जरिया बने हुए हैं। कोयला खनन की परियोजनाओं के लिए जितनी जमीन हड़पी जा रही है इस सरकारी लूट का ऐसा उदाहरण पूरी दुनिया में कहीं देखने को नहीं मिलेगा।

यह तथ्य किसी से छिपा नहीं है कि देश के ज्यादातर खनिज संसाधन जंगलों तथा अनुसूचित क्षेत्रों में केन्द्रित हैं। खनन आज पर्यावरण तथा स्थानीय समुदायों की आजीविका को तबाह करने का मुख्य स्रोत बन चुका है और अब यह तबाही अपनी चरम सीमा पर पहुंच चुकी है। इस तबाही के प्रभाव इतने व्यापक तथा विविधतापूर्ण हैं यहां तक कि संविधान द्वारा सुरक्षित अनुसूचित क्षेत्र (अनुसूचित 5 और 6) जहां पर देश की ज्यादातर खनिज संपदा है यह क्षेत्र भी इन नुकसानों से नहीं बचे हैं। इससे ज्यादा विडम्बना की बात और क्या होगी! अब एकल खनन पट्टे के तहत 10,000 हैक्टेयर या 100 वर्ग कि.मी. तक खनन पट्टा दिये जाने की बात की जा रही है। यह बहुत ही बड़ा क्षेत्र है तथा यह बहुत

सारे समुदायों की सामूहिकता को तहस–नहस करने के साथ बहुत ही बड़े स्तर पर विस्थापन को भी बढ़ावा देगा। इसके लिए किसी सामाजिक प्रभाव आकलन करने की जरूरत नहीं है यह साफ दिख रहा है। जिस तेजी से आंखें बंद करके सरकार कोल ब्लाक बांट रही है वह अपने आप में हैरतअंगेज है। छत्तीसगढ़, झारखंड जैसे राज्यों में जिस स्तर पर कोल ब्लाक निजी कंपनियों को बांटे गये हैं उनका आकार इतना बड़ा है कि कई जिले जिसमें सैकड़ों गांव शामिल हैं कोयला खनन की प्रक्रिया में उजड़ जायेंगे। कारपोरेट द्वारा 'विकास' के नाम पर प्राकृतिक संसाधनों की अंधाधुंध लूट के कारण लाखों नागरिकों के भविष्य पर सवाल खड़ा हो गया है। 1947 से अब तक भारत की विकास परियोजनाओं से विस्थापित हो चुके या परियोजना से प्रभावित लोगों की संख्या लगभग 6 करोड़ है। योजना आयोग द्वारा लगभग 2.1 करोड़ विस्थापितों पर किये गये अध्ययनों से पता चला है कि उनमें से लगभग 40 प्रतिशत से ज्यादा लोग आदिवासी थे जबकि भारत की कुल आबादी में इनका हिस्सा केवल 8 प्रतिशत है।

अनगिनत पावर प्लांट अपने आप में एक समस्या बनने वाले हैं। जनसुनवाई के नाम पर 'लोकतंत्र' को जो मजाक उड़ाया जाता रहा है उसी कड़ी में एक उदाहरण 25 सितंबर 2013 की छत्तीसगढ़ रायगढ़ के गारे कोयला ब्लाक की जनसुनवाई का है। प्रशासन ने इस जनसुनवाई को भी सफल करार दिया है। जिंदल कंपनी की इस कोयला खनन परियोजना में हजारों नागरिक अपना विरोध दर्ज करवाने पहुंचे। कारपोरेट की मुनाफे की कभी न बुझने वाली प्यास आज एक भयंकर समस्या बन चुकी है। इस पिशाची प्यास के नतीजे आदिवासी, दलित वंचित वर्ग को भुगतने पड़ रहे हैं। यह कानून जो 'ऐतिहासिक अन्याय' को रोकने के लिये बना है उन्हीं ऐतिहासिक गलतियों को दुहरा रहा है जिसका खामियाजा इस देश की जनता सदियों से भुगतती आ रही है। कारपोरेट को सुलभता–सरलता से भूमि उपलब्ध कराने के लिये बना ये कानून उन लाखों/करोड़ों लोगों की भावनाओं के साथ एक खिलवाड़ है जिनके लिए भूमि ही जीवनयापन का एकमात्र साधन है। इस कानून को बनाने वाले विशेषज्ञों के लिए एक ही बात कही जा सकती है– 'भोली सूरत दिल के खोटे, नाम बड़े और दर्शन छोटे !'

भूमि अधिग्रहण, पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन में उचित मुआवजा और पारदर्शिता का अधिकार अधिनियम– 2013 का खुलासा

जब इस अधिनियम की असली नीयत को जानने की तरफ हम आगे बढ़ें तो हमारे लिए यह बाध्यकारी हो जाता है कि उन हालात पर भी गौर करें जिन हालात की यह उपज है। जब आदिवासियों, असंगठित क्षेत्र के मजदूरों, खेतिहर मजदूरों, महिलाओं, अल्पसंख्यकों तथा खेतिहर समाज के लिए नये–नये कानूनों, कल्याणकारी योजनाओं को ईजाद किया जा रहा था तो सत्तावर्ग की 'निगाहों और निशानों' में फर्क करने की गलतियां भी की जा रही थीं। परंतु इस अधिनियम के आने और लगभग सभी की सभी राजनीतिक पार्टियों द्वारा इस मुद्दे को महत्व न देने के कारनामे ने यह सिद्ध कर दिया कि सत्तावर्ग की 'निगाहें तथा निशाना' वहीं है जो इस अधिनियम का परोक्ष/अपरोक्ष ध्येय है। यह ध्येय है उदारीकरण–निजीकरण की प्रक्रिया को और गति देते हुए भू–बाजारीकरण की वैश्विक प्रक्रिया का विश्वसनीय हमराही बनना। यह विधेयक निश्चित तौर पर बाजार की स्वच्छंदता को और सशक्त करेगा तथा इस विधेयक द्वारा अर्जित अधिकार, सत्ता को एक ऐसा वैधानिक आधार प्रदान करेगा जहां पर भूमि सहित सभी प्राकृतिक वरदानों पर कब्जा करने, मुनाफा कमाने के लिए देशी/विदेशी कारपोरेट्स, कम्पनियों, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को 'राष्ट्र–राज्य' और अधिक बाधा रहित अवसर उपलब्ध करा सकेगा। फलस्वरूप बाजार की स्वच्छंदता का विस्तार होता जायेगा।

बाजार की इस स्वच्छंदता का खामियाजा मानवता कई बार भुगत चुकी है। वर्ष 1929 में अमरीकी शेयर बाजार के ध्वस्त होने, वर्ष 1930 की महामन्दी, द्वितीय विश्व युद्ध की शुरूआत के पूर्व ही व्यापारी राष्ट्रों का आर्थिक मंदी की विभीषिका से जूझना। विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद इस गंभीर मामले पर गंभीर चिंतन मनन आरंभ हुआ। इसके चलते पाश्चात्य देशों और विशेष तौर पर मित्र राष्ट्रों– ब्रिटेन, कनाडा, फ्रांस, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड और अमरीका में 'मुक्त व्यापार' और 'स्वच्छंद बाजार' की व्यापक आलोचना की गयी थी। इस दौरान बाजार प्रेरित व केन्द्रित आर्थिक माडल जो सामाजिक मूल्यों व जनहित के मुकाबले धन और निवेश को ज्यादा तरजीह देता है, की सार्थकता को बौद्धिक जगत में शक की निगाह से देखा जाने लगा था। कार्ल पोलानी

दक्षिणपंथी रूझान, दुनिया का एक ध्रुवीय बनना तथा सफल लोगों द्वारा असफल लोगों की जिम्मेदारी से पल्ला झाड़ने की घोषणायें और साथ ही साथ भूमण्डलीकरण के नारे के तहत विश्व ग्राम की आकर्षक सूक्ति के साथ संसार की प्रत्येक वस्तु को 'ग्लोबल कमोडेटी' घोषित करने की प्रक्रियाओं ने राष्ट्र–राज्यों की सम्प्रभुता को खण्डित करते हुए एक ऐसे अघोषित विश्व केन्द्र को स्वेच्छा या विवशतावश मान्यता दे दी या अंगीकृत कर लिया, जहाँ से तमाम नीतियों–कानूनों का निरूपण, संचालन तथा नियंत्रण किया जा रहा है। इस 'वैश्विक सत्ता' (?) के साथ हमारे शासक वर्ग भी गलबहियाँ डालने में ही अपनी स्थिरता तथा कामयाबी को देख रहे हैं।

यदि हम अधिनियम को देखें तो यह एकदम स्पष्ट हो जाता है कि देश की मौजूदा आर्थिक व्यवस्था (जो कहीं न कहीं से और किसी न किसी रूप में आर्थिक साम्राज्यवादी ताकतों द्वारा निर्देशित है) के निर्देशों के अनुरूप अपनायी गयी मुनाफा/पूँजी केन्द्रित विकास की अवधारणा की जरूरतों के मुताबिक ही वन अधिकार अधिनियम, कृषि नीति, खनिज नीति तथा विश्व व्यापार संगठन की सदस्यता को स्वीकार करना, परमाणु संधि करना आदि की ही तरह यह कानून भी पारित किया गया है।

गैट, डंकल प्रस्ताव तथा विश्व व्यापार संगठन के दौर से आगे बढ़ते हुए कृषि, वन, खनिज, सामूहिक संपदा के संदर्भ में सरकारी नीतियों– कानूनों ने कारपोरेट फारर्मिंग, एस.ई.जेड., वनों के बड़े हिस्से से आदिवासियों की बेदखली, पेटेण्ट कानून, कृषि को अनाकर्षित बनाने के लिए सबसिडी का खात्मा, रिटेल बाजार में बड़ी पूँजी को इजाजत, परमाणु ऊर्जा को वक्त की जरूरत बताने तथा शिक्षा–स्वास्थ्य–पानी तक के निजीकरण का कार्य एक एक करके सम्पन्न कर लिया था। नरसिंहा राव के कार्यकाल में शुरू की गयी आर्थिक नीति, जिसके सिरमौर तत्कालीन वित्तमंत्री जो मौजूद समय में प्रधानमंत्री हैं डा. मनमोहन सिंह थे, से लेकर आज तक लगभग उसी आर्थिक नीति का अनुशरण जारी रहा है। हालाँकि इस 20 साल के दौर में अन्य पार्टियों, गठबंधनों– संयुक्त मोर्चा, राष्ट्रीय लोकतांत्रिक मोर्चा की सरकारें भी केन्द्रीय स्तर पर आयीं और गयीं। वी.पी. सिंह, अटल बिहारी वाजपेयी, चन्द्रशेखर, देवगौड़ा, इन्द्रकुमार गुजराल सरीखे प्रधानमंत्री 13 दिन से लेकर पूरे कार्यकाल तक प्रधानमंत्री रहे

परंतु आर्थिक नीतियों में कोई गुणात्मक बदलाव नहीं आया। इस दौर में भी केन्द्र के साथ ही साथ राज्य सरकारें भी इस आर्थिक नीति को बहुत तेजी के साथ लागू करने में जुटी रहीं, इस पुनीत कार्य में वे पार्टीगत मतभेदों में उलझने से परहेज करती रहीं तथा विकास के महायज्ञ में वैचारिक, सैद्धांतिक तथा पार्टीगत मतभेदों से निरपेक्ष बनी रहीं।

गांधी के ग्राम स्वराज्य की अवधारणा को उनके प्रिय शिष्य नेहरू ने ही खारिज कर दिया था, नेहरू की समाजोन्मुखी मिश्रित अर्थ व्यवस्था भी थोड़े दिन ही ठहर पायी, इन्दिरा गांधी अन्तिम प्रधानमंत्री थीं जिन्होने वर्ष 1983–84 में किसी अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थान (अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष) की कर्ज की शर्तों को मानने से इंकार करके कर्ज की दूसरी किश्त स्वीकार नहीं की थी। फिर राजीव गांधी के शासन काल में हर नीति के आगे 'नयी' शब्द जोड़कर जो संचार क्रांति और 21 वीं शताब्दी के सुनहरे सपनों का नारा लगाया गया वह लगातार आगे ही बढ़ता गया। उनके उत्तराधिकारी नरसिंहा राव उनके सपनों को साकार करने में डट गये।

इस बीच पूँजी के चरित्र में भी तेजी के साथ बदलाव आ रहा था। ज्ञात इतिहास में अपने सबसे निर्मम तथा अमानवीय स्वरूप में पूँजी पहुँच गयी है। पूँजी के वैश्विक नियंताओं ने अविकसित ,विकासशील देशों द्वारा खड़े किये गये समानान्तर ढांचों, प्रक्रियाओं, मंचों को धराशायी कर दिया। इसमें गुट निरपेक्ष आंदोलन (नाम) तथा सार्क जैसे मंचों को रखा जा सकता है।

दो–दो विश्व युद्वों से सबक लेते हुए कोई ऐसी जुगत बैठाने की बात बाजार की ताकतों ने तय की जिससे बाजार की प्रतिस्पर्धा सहज और शांतिपूर्ण ढंग से हो। इसके लिए यह आवश्यक था कि ऐसे उत्पादों पर ध्यान केन्द्रित किया जाय जिसकी मांग कभी कम न हो और सभी कर्ता मुनाफा भी अर्जित कर सकें। अतएव यह सहमति बनी कि भोजन, पानी, शिक्षा–स्वास्थ्य को मुनाफे के केन्द्र के रूप में विकसित किया जाय। इसके लिए दो बातों की आवश्यकता थी, पहली–लोकतंत्र एवं लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा की समाप्ति, बाजार में राज्य के हस्तक्षेप की समाप्ति तथा दूसरी प्राकृतिक संसाधनों (वन, जल,, खनिज, भूमि) पर नियन्त्रण। अपनी इन जरूरतों की पूर्ति के लिए विश्व व्यापार संगठन का गठन तथा इसके फलस्वरूप राष्ट्र–राज्यों की

सम्प्रभुता का खात्मा, बाजारवादी ताकतों की एक और विजय थी। आगे का मामला साफ था लोकतांत्रिक संस्थानों का अलोकतांत्रिक कार्यों के लिए इस्तेमाल, निजीकरण का वर्चस्व।

मौजूदा कानून इन दोनों मामलों की पूरी निष्ठा के साथ पूर्ति करता है। पूरे देश की आबादी के हित के विपरीत, संसद जो सर्वोच्च लोकतांत्रिक संस्था है, इस अधिनियम को पारित करने के लिए तत्पर थी। यह कानून निजी पूँजी (देशी–विदेशी) के वर्चस्व का रास्ता साफ करता है। यह सब उन सांसदों द्वारा किया जायेगा जो संविधान के प्रति आस्था व्यक्त करने की सौगंध खाते हैं और संविधान की उद्देशिका में 'समता, समाजवाद और लोक कल्याणकारी राज्य' जैसे उद्देश्य शामिल हैं।

सवाल यह उठता है कि आखिर यह सब क्यों हो रहा है ? किसके दबाव तथा निर्देश में हो रहा है ? बहुत पीछे के दौर को यदि हम छोड़ भी दें तो भी हाल के सालों की घटनाओं के उदाहरणों को लेकर इसे समझा जा सकता है। भूमि अधिग्रहण का ही उदाहरण लें।

यदि हम इस अधिनियम के प्रावधानों को लें तो साफ तौर पर यह दिखता है कि भारत में भूमि सम्बन्धी कानूनों और नीतियों (केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारों के स्तर पर) का निर्धारण वैश्विक राजनैतिक अर्थव्यवस्था तथा अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों के दिशा निर्देश में किया जा रहा है। इसमें किये गये प्रावधानों को विश्व बैंक के नीतिगत दस्तावेजों जैसे रिपोर्ट संख्या 38298 आइएन, जुलाई 9, 2007 जो दक्षिण एशिया क्षेत्र की इण्डिया कण्ट्री मैनेजमेण्ट युनिट की तरफ से 'भारत में भूमि नीतियाँ : विकास एंव गरीबी उन्मूलन' के लिए और विश्व बैंक द्वारा वर्ष 1996–97 में भारत की शहरी भूमि के बारे में जारी किये गये दिशा निर्देशों में हू–बहू देखा जा सकता है। इसमें ऐसे भी दिशा निर्देश हैं जिनको लागू कराने या जिनका कानून बनवाने के लिए कुछ सामाजिक संगठनों ने बड़ी–बड़ी यात्रायें करके, 'कन्सल्टेंशस आर्गनाइज' करके तथा वैकल्पिक कानूनी ड्राफ्ट बनाकर, माँग तक भी कर डाली थी। विश्व बैंक के इन नीतिगत घोषणाओं तथा दिशा–निर्देशों को भूमि अधिग्रहण पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन में उचित मुआवजा और पारदर्शिता का अधिकार अधिनियम– 2013 में किस तरह समाहित किया गया है उसे जानना महत्वपूर्ण है–

विश्व बैंक नीतिगत घोषणा करता है कि (वर्ष 2007, 9 जुलाई) :-

1. भूमि की उपलब्धता (लीजिंग) वहाँ भी उपलब्ध करायी जाय जहाँ यह प्रतिबंधित है।
2. भूमि के खरीद–फरोख्त (जहाँ यह प्रतिबंधित है) के अवरोध को स्थायी रूप से हटाया जाय तथा तात्कालिक तौर पर लीज का प्रावधान हो।
3. कृषि भूमि को गैर कृषि प्रयोजन हेतु बिक्री करने पर लगी रोक हटायी जाय।
4. भूमि अर्जन हेतु भूमि अधिग्रहण अधिनियम की बाध्यता सम्बन्धी विधान की समीक्षा की जाय तथा किसानों या उनके प्रतिनिधियों को जरूरतमंद निवेशकर्ताओं के साथ सीधे तौर पर भूमि की खरीद–फरोख्त के बारे में सौदा करने और बेचने की आजादी होनी चाहिए, 'यह कार्य किसान सरकार के माध्यम से ही कर सकते हैं'– इस तरह की वैधानिक बाध्यता खत्म की जानी चाहिए। सरकार के माध्यम से किसानों की भूमि के अर्जन से उन्हे मुआवजा भी बहुत कम मिलता है।

विश्व बैंक के इन नीतिगत निर्देशों को इस अधिनियम में यथावत रखा गया है। इससे उन सामाजिक संगठनों की यह माँग भी पूरी हो जाती है जिसके तहत वे चाहते थे कि निवेशकर्ता सीधे तौर पर किसानों से सौदा करें उसी तरह की माँग भारत के भू.पू. प्रधानमंत्री स्व. वी.पी. सिंह भी करते रहे थे। किसानों को कम मुआवजा (जब सरकार के माध्यम से भूमि का अधिग्रहण होता है) की विश्व बैंक की चिंता का भी इस अधिनियम में ध्यान रखा गया है। यह मुआवजा बाजार दर से 2 गुणा तक होगा तथा कुछ सालों तक नियमित रूप से प्रति माह धन की प्राप्ति भी होती रहेगी। विश्व बैंक का दबाव और ज्यादा मुआवजा देने की सरकार की घोषणा का कारण रहस्यपूर्ण न होकर एकदम स्पष्ट है 'किसी भी तरह से जमीन मिले' वाली नीति।

इसी तरह अगस्त 1996 में युनाइटेड नेशंन्स डेवलेपमेण्ट प्रोग्राम (यू.एन.डी.पी.), युनाइटेड नेशंस सेंटर फार ह्यूमन डेवलपमेण्ट सेटेलमेण्ट (यू.एन.सी.एच.एस.) एवं विश्व बैंक द्वारा 'अरबन मैनेजमेण्ट प्रोग्राम' हेतु जारी शहरी भूमि नीतियों में सुधार हेतु दिशा–निर्देश जारी करते हुए कहा गया कि 'भूमि विकास कार्यक्रमों को निजीकृत करना– अत्यधिक महत्वाकांक्षी सुधार कार्यक्रम होगा' इसके लिए भूमि बाजार का आकलन, भूमि प्रबंध

प्राधिकरणों का विकेन्द्रीकरण, शहरी भूमि कानूनों नीतियों का विनयमितीकरण, भूमि विकास के मामलों में सार्वजनिक एजेंसियों की भूमिका कम करना, शहरी भूमि नीति के टिकाऊ ढांचागत निर्माण हेतु निवेश कार्यक्रम के साथ समन्वय करना आदि के निर्देश दिये गये थे। परिणामस्वरूप रीयल इस्टेट एक्टर्स, ए.डी.बी. .यू.एन.डी.पी., पानी के व्यापार से जुड़ी वैश्विक कम्पनियों के लिए दरवाजे खोल दिये गये और जे.एन.यू.आर.एम. का जन्म हुआ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस कानून में 1996 एवं वर्ष 2007 के विश्व बैंक एवं अन्य अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों के निर्देशों को पूरी तरह समाहित किया गया है। ऐसा होना स्वाभाविक है क्योंकि यहीं से हमारे शासकों को अपनी अर्थव्यवस्था तथा इसके अन्तर्गत विकास की मौजूदा अवधारणा को अपनाने की प्रेरणा मिली है। इसी वैश्विक मठ से दीक्षित विद्वानों के हाथ में इस वक्त देश के नियोजन, संचालन, नियंत्रण की लगाम है। गुरू दीक्षा से नकारना हमारी संस्कृति में वैसे भी अपकीर्तिकारी माना जाता रहा है।

अब दूसरा गंभीर सवाल है कि हमारे शासक पिछली गलतियों और अमानवीय कृत्यों से सबक लेने को तैयार क्यों नहीं हैं ? बाजार के बढ़ते वर्चस्व ने दो–दो बार पूरी दुनिया को विश्व युद्व में झोंका है, महामंदियों के दौर में पूरी दुनिया को ढकेला है। अभी हमारे वित्तमंत्री तथा प्रधानमंत्री भी यह कह रहे हैं कि दुनिया एक बार फिर से आर्थिक मंदी की तरफ बढ़ रही है, फिर भी बाजार को असीमित अधिकार देने तथा निर्द्वन्द छोड़ने की प्रक्रिया क्यों दिन प्रति दिन तेज की जा रही है। इस प्रक्रिया का पूरा प्रभाव इस अधिनियम पर साफ–साफ दिख रहा है जिसमें निजीकरण, शहरीकरण तथा प्रत्यक्ष देशी–विदेशी निवेश के लिए मुख्य रूप से सरल और सहज रास्ता बनाया गया है।

हालाँकि बाजार की स्थापना का श्रेय पूँजीवादी व्यवस्था को नहीं दिया जा सकता परंतु उसके विस्तार, सर्वव्यापकता तथा चरित्र में मूलभूत परिवर्तन की जिम्मेदारी इसी के नाम है।

बाजार को स्वच्छंद छोड़ने के दुश्परिणामों के बारे में अर्थशास्त्री बार–बार चेतावनी देते रहे हैं। द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद ब्रेटनउड सम्मेलन के मौके पर पोलानी तथा कींस जैसे अर्थशास्त्रियों ने शासकों को चेतावनी दी थी कि बाजार को

स्वच्छंद छोड़ने के परिणाम केवल अर्थव्यवस्था के लिए ही नहीं बल्कि पूरी मानवता के लिए खतरनाक होंगे। इन विद्वानों ने शासकों से कहा था कि सरकारों को बाजार पर नियंत्रण रखना चाहिए।

लेकिन इस चेतावनी का असर शासकों पर ज्यादा दिन तक कायम न रह सका। विश्व युद्व के घावों के भरने तथा हुई क्षतियों की पूर्ति होते ही शासकों ने फिर से धीरे–धीरे बाजार को स्वच्छंद छोड़ना शुरू कर दिया था और आज यह ताकतें दुनिया के अधिकांश शासकों को अपनी शर्तों तथा अपने हित में कार्य करने हेतु या तो सहमत करने में कामयाब हुई हैं अथवा राजनीति में हस्तक्षेप करके ऐसा करने के लिए शासकों को विवश कर चुकी हैं।

विश्व व्यापार संगठन के गठन तथा उसमें सन्निहित नियम, कायदे, कानून और शर्तों ने इसकी सदस्यता लेने वाले राष्ट्र–राज्यों की न केवल सम्प्रभुता समाप्त कर दी है बल्कि उन्हे एक बिचौलिये की भूमिका तक सीमित कर दिया है। विश्व व्यापार संगठन की शर्तों– निर्यातोन्मुखी उत्पादन, खुला व्यापार, बाजार एवं व्यापार में राज्य का न्यूनतम हस्तक्षेप, देशी–विदेशी के नाम पर भेदभाव की समाप्ति, माल और मुनाफे को कहीं पर भी लाने–ले–जाने– निवेश करने की छूट, निजीकरण को बढ़ावा, सीमा शुल्कों की समाप्ति तथा स्थानीय मुद्रा का अवमूल्यन तथा इस प्रक्रिया के वैश्वीकरण में बाधक बन रही नीतियों, कानूनी प्रावधानों, राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय संधियों और ऐसे ढांचों–प्रक्रियाओं की समाप्ति जो विकास (?) में बाधक हैं, को हमारा शासकवर्ग स्वीकार कर रहा है तो सहज ही समझा जा सकता है कि विश्व व्यापार संगठन की सदस्यता लेने तथा उसकी शर्तों पर सहमति देने के नाते इस पर अमल करना हमारे शासकों की बाध्यता है। यदि इस रोशनी में इस अधिनियम को देखें तो यह साफ पता लगता है कि इस अधिनियम के प्रावधान इसी प्रक्रिया को विस्तार देने हेतु कटिबद्व हैं।

'पूँजी की हिफाजत' के लिए 'ज्यादा से ज्यादा भूमि का मालिकाना मजबूरी है 'पूँजीपति वर्ग' की और 'राष्ट्र–राज्य' कटिबद्ध है इस संकट से उन्हें उबारने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ की जनरल असेम्बली में 24 सितंबर 2011 को जब देश के विद्वान प्रधानमंत्री (माहिर अर्थशास्त्री) यह कह रहे थे कि 'अमरीकी, यूरोपीय देशों

तथा जापान की डाँवाडोल आर्थिक स्थिति का विकासशील देशों की अर्थव्यवस्थाओं पर बुरा असर पड़ रहा है' उसी वक्त उसी स्थान पर जी.डी.पी. विशेषज्ञ हमारे वित्तमंत्री विश्व बैंक से अनुरोध कर रहे थे कि 'अविकसित तथा विकासशील देशों को ज्यादा से ज्यादा कर्ज उपलब्ध कराने के लिए विश्व बैंक ज्यादा से ज्यादा पूँजी की व्यवस्था करे' और यहां दिल्ली में पिछले दिनों में योजना आयोग गरीबी रेखा के निर्धारण के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में 27 रुपये तथा शहरी क्षेत्रों में 33 रुपये प्रतिदिन प्रति परिवार की घोषणा कर रहा था। प्रधानमंत्री यू.एन.ओ. की जनरल असेम्बली में यह भी बोल रहे थे कि 'उन्होंने अपने देश के लोगों के लिए भोजन समेत तमाम बुनियादी जरूरतों को पूरा करने में काफी हद तक कामयाबी हासिल की है। साथ ही वे उग्रवाद–आतंकवाद की समस्या के समाधान के लिए विश्व स्तर पर एकजुट पहल की अपील भी कर रहे थे।'

यह सब ऐसे दौर में हो रहा है जब दुनिया के तमाम अर्थ विज्ञानी इस बात का भी संकेत दे रहे हैं कि दुनिया एक बार फिर से आर्थिक मंदी की दौर की ओर बड़ी तेजी से बढ़ रही है। संयुक्त राज्य अमरीका की रेटिंग गिरने की घोषणा करते ही पूरी दुनिया में भूचाल आ गया। शेयर–सेंसेक्स, बैंकों के ब्याज सब डाँवाडोल होने लगे। अमरीकी सीनेट में हंगामा खड़ा हो गया। 2008 के आर्थिक भूचाल को भी दुनिया देख चुकी है।

अगर इन परिस्थितियों में प्रधानमंत्री, वित्तमंत्री के बयानों तथा योजना आयोग की गरीबी रेखा निर्धारण के मानदण्डों को हम देखें तो एकदम साफ नजर आता है कि इन वस्तुगत परिस्थितियों की हकीकत से जानबूझ कर आंखें बन्द रखी जा रही हैं। जिन अर्थव्यवस्थाओं (अमरीकी–यूरोपीय तथा जापानी–जो वास्तव में एक ही हैं) को आदर्श मानकर डा. मनमोहन सिंह ने वित्तमंत्री के रूप में उदारीकरण–निजीकरण के वैश्वीकरण का रास्ता पकड़ा था और उसके प्रवक्ता के रूप में पी. चिदंबरम के साथ ख्याति अर्जित करने में कामयाब रहे थे, आज उसकी असलियत दुनिया के सामने है। लंदन के दंगे, यू.एस.ए. में बढ़ती बेरोजगारी, जापान में आर्थिक ठहराव तथा चीन में श्रमिकवर्ग की बदतर हालात इसके हालिया सबूत हैं।

बार–बार 'जादू की छड़ी' का जुमला जब विद्वान प्रधानमंत्री दुहराते हैं तथा गृहमंत्री कारपोरेट्स को जमीन, जंगल, खनिजों

पर कब्जा दिलाने के लिए कुछ भी कर गुजरने की घोषणायें करते हैं, राहुल गांधी उड़ीसा में जाकर आदिवासियों के सिपाही होने की घोषणा करते हैं, नरेन्द्र मोदी टाटा को जमीन कुछ घण्टों में उपलब्ध करा देते हैं, मारूति–सुजुकी कम्पनी को जमीन देने के लिए (कम्पनी की ही शर्तों पर) तमिलनाडु, गुजरात और हरियाणा की सरकारें लालायित नजर आती हैं तब यह सब देख सुनकर किसी को भी ऐसा आभास होता है कि या तो हमारी सरकार अपने राष्ट्र–राज्य की संप्रभुता को कहीं गिरवी रखकर काम कर रही है या उसने माल–मुनाफे–पूँजी के हित में अपने नागरिकों की फिकर करना बंद कर दिया है। फिर भूमि–अधिग्रहण के इस कानून में वह लोगों की फिकर करके अपने पथ से क्यों विचलित होकर विधर्मी बनना चाहेगी? और विश्व की आर्थिक व्यवस्था के नियंताओं की कोप–भाजन क्यों बनना चाहेगी?

उदारीकरण–निजीकरण के खगोलीकरण की प्रक्रियाओं की तेज़ी ने मात्रागत तथा गुणात्मक– दोनों स्तरों पर विकास की अवधारणा में बदलाव किये हैं। विकास के मूल लाभार्थियों में जहां एक तरफ व्यापक एकजुटता दिख रही है वहीं पर इनमें मुनाफे, हिस्सेदारी तथा वर्चस्व को लेकर आंतरिक द्वंद भी दिखायी पड़ते रहते हैं। इसके नियंता बड़ी तेज़ी के साथ हिंसक, आक्रामक, अमानवीय और प्रकृति विरोधी हुए हैं– इस मसले पर उनकी प्रतिबद्धता में कोई अंतर नहीं है। मनुष्य का जीवन, सुख, आनंद तथा मानवीय मूल्य– सामूहिकता, भाईचारा, बहनापा, प्रेम, पारस्परिक सम्मान, विभिन्नताओं का सम्मान, असहमतियों को स्थान और पारस्परिक सह–अस्तित्व, शांति, समानता आदि को विकास के एजेण्डे से न केवल बाहर रखा गया है बल्कि काफी हद तक इनको विकास में बाधक भी माना जा रहा है। विकास का अर्थ अनावश्यक एवं अवैज्ञानिक अधिसंरचनाओं के निर्माण कार्यों तक ही सीमित कर दिया गया है। यह अलग सवाल है कि अभी फौरी तौर पर जिसे विकास कहा जा रहा है उसका दूरगामी विकास से कोई रिश्ता है भी या नहीं? या विनाश की तरफ ले जाने की एक जानी–अनजानी प्रक्रिया है। विकास की इस प्रक्रिया से माल–मुनाफा अर्जित करने वाले इस बात से बेफिक्र नज़र आते हैं क्योंकि वे अपने द्वारा किये गये विनाश से भी मुनाफा कमाने के विशेषज्ञ हैं।

अनावश्यक एवं अवैज्ञानिक अधिसंरचनाओं के निर्माण को ही

विकास मानने की अवधारणा के तहत उत्पादन इकाइयों (कल–कारखाने, एस.ई.ज़ेड.), कच्चे माल (माइनिंग), ऊर्जा (बड़े–बड़े बांध, परमाणु ऊर्जा संयंत्रों, प्राकृतिक गैसों–तेलों), संचार व्यवस्था (सड़क, रेल लाइन, हवाई अड्डे, बंदरगाह) तथा शहरों का विस्तार (मण्डी, बाज़ार, मॉल्स, गोदाम, होटल, फ्लाई ओवर, आवासीय कालोनियों) आदि के लिए हर कदम पर ज़मीनों की, नदियों के पानी की, प्राकृतिक खनिज पदार्थों, प्राकृतिक गैसों की अधिक से अधिक ज़रूरत होगी। अतएव विकास की मलाई काटने के लिए वही ज़्यादा कारगर होगा जिसके पास पूंजी के साथ–साथ ज़्यादा से ज़्यादा ज़मीनों का मालिकाना होगा। अतएव ज़मीन दिन प्रतिदिन बेशकीमती होती जा रही है।

इसके साथ ही ज़मीन की भूख इसलिए भी बढ़ती जा रही है क्योंकि दुनिया के बड़े–बड़े पूंजीपति और उनके खेमे ऐसे वित्त पर टिके हैं जो 'निर्गुण ब्रह्म' की तरह अदृश्य है। यह वित्तीय बुलबुले कब फूट जायेंगे इसका कोई भरोसा और सही आकलन भी मौजूद नहीं है। हर महीने, हर साल आने वाले वित्तीय संकट से उबरने का कोई सुव्याख्यायित तरीका इस व्यवस्था के नियंताओं के पास न है और न हो सकता है। वर्ष 2008 संयुक्त राज्य अमरीका के बंद होते बैंकों के दृश्यों को देखा गया है। आर्थिक मंदी, मुद्रास्फीति तो रोज रोज की सुर्खियां हैं। आप सोचें यदि यह अदृश्य–पूंजी हमेशा के लिए अदृश्य हो जाय, यदि वित्तीय पूंजी का रंग–रोगन, ताम–झाम टूट–फूट जाय तथा बैंकिंग सेक्टर धराशायी हो जाय तो इस आर्थिक व्यवस्था की तथा अपनी पूंजी के हितों की रक्षा कैसे की जा सकेगी? इससे प्रभावित होने की समस्या से सशंकित पूंजीपति वर्ग ने अपने बचाव के तरीकों के बारे में भी सोच–विचार कर कोई रास्ता ढूंढने की जुगत भिड़ा रखी है। वे इस बात के लिए बुरी तरह से आतुर हैं कि इस अदृश्य वित्तीय पूंजी (जिसकी वफादारी का कोई भरोसा नहीं) को ''सब्सटेंशियल कैपिटल'' (टिकाऊ/स्थायी पूंजी) जिस पर भरोसा किया जा सकता है, में कैसे बदला जाय। इसके लिए वे ''फिज़िकल एसेट्स'' को कब्ज़ाने की होड़ में लग गये हैं। इस तरह के एसेट्स में ''भूमि'' एक बेहतर विकल्प है। अतएव ज़मीनों पर कब्ज़ा करना आज पूंजीपति वर्ग के लिए बाध्यता बन गयी है। इसके अलावा उन्हें अपनी पूंजी बचाने तथा मुनाफा बढ़ाने का कोई रास्ता फिलहाल नज़र नहीं आ रहा है। इसीलिए ज़मीन की भूख बढ़ती जा रही है।

भूमि आज 'ग्लोबल कम्युनिटी' की होती जा रही है। 'वित्त' की स्थितियाँ तो घटती–बढ़ती रहेंगी, परंतु भूमि की कीमत तो लगातार बढ़नी ही है। अतएव भूमि का ज्यादा से ज्यादा मालिकाना आज बाजार की 'डायनेमिक्स' है। अतएव आज की तथाकथित वैश्विक पूँजी पूरी की पूरी जमीन को बाजार के हवाले करके न केवल अपने मुनाफे को बढ़ाने पर आमादा है बल्कि 'वित्तीय संकटों' से प्राणरक्षा के लिए भी इस फार्मूले को आज की तारीख में सही मान रही है। इसीलिए बाजार पर अपना पूर्ण वर्चस्व बनाते हुए वैश्विक पूँजी ने ऐसी परिस्थितियां पैदा कर दी हैं कि उसके दबाव में, जो स्वाभाविक रूप में उसी के हित में होंगे, भूमि कानूनों में तेजी के साथ बदलाव कराये/किये जा रहे हैं।

इसीलिए जहां किसी परियोजना या कारखाने के लिए 5 हेक्टेयर ज़मीन की ज़रूरत है वहां पर भी 50 से 100 हेक्टेयर ज़मीन की मांग की जाती है और सरकार की कृपा से मिल भी जाती है। सैकड़ों साल पुराने कई ऐसे कारखाने भी हैं जिनके पास इतनी फालतू ज़मीन है कि वे अपने पुराने कारखाने में ही एस.ई.ज़ेड. की स्थापना करने की सोच रहे हैं।'

'मैनुफैक्चरिंग'' के स्थान पर आज पूंजी के निशाने पर भोजन, पानी, दवा तथा शिक्षा आ गये हैं। भोजन के व्यापार तथा खाद्यान्न के व्यापार के लिए एस.ए.ज़ेड. (स्पेशल एग्रीकल्चर ज़ोन), कारपोरेट फार्मिंग (जिसकी झलक गंगा एक्सप्रेस वे तथा यमुना एक्सप्रेस वे परियोजनाओं से मिल रही है), पानी के लिए बड़े–बड़े बांधों तथा नदियों पर नियंत्रण, स्वास्थ्य के धंधे के लिए जंगलों–पहाड़ों में जड़ी–बूटियों का उत्पादन तथा शिक्षा से मुनाफा कमाने के लिए बड़े–बड़े स्कूल–कालेज–इंस्टीट्यूट्स तथा विश्वविद्यालय की स्थापना। इन सारे कार्यों के लिए ज़्यादा से ज़्यादा ज़मीनों की ज़रूरत पड़ रही है अतएव ज़मीन बेशकीमती होती जा रही है।

इन परिस्थितियों में दो स्पष्ट ध्रुव बनते जा रहे हैं पहला वह जिसने खाना, पानी, दवा और शिक्षा तक को मुनाफे के निशाने पर रखा है तथा दूसरा वह जो अपनी ज़मीन, वन, खनिजों, खेती, नदी, पानी की रक्षा के लिए तथा अपनी छिनती जीविका–छिनते अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्ष के रास्ते पर है। इन दोनों ध्रुवों के बीच जारी द्वंदात्मक संघर्ष में समाज में मौजूद ताकतें, नीतियां,

कानून निरपेक्ष नहीं हो सकते। इसी पैमाने पर इस भूमि–अधिग्रहण अधिनियम को भी परखना उचित होगा।

इस तरह के कानून एक सुनिश्चित राजनीतिक–आर्थिक–सामजिक व्यवस्था की उपज होते हैं। इसका विश्लेषण अपनी पसंद–नापसंद, नेताओं के व्यक्तित्व की विशिष्टताओं के आधार पर करके हम जो भी निष्कर्ष पायेंगे उसके भ्रामक बने रहने की पूरी संभावनायें रहेंगी। इससे कोई विशेष अंतर नहीं पड़ने वाला कि कौन सा कानून औपनिवेशिक दौर में बना और कौन सा स्वतंत्र भारत में बल्कि महत्वपूर्ण यह है कि कानून का उद्देश्य क्या है और इसका व्यापक आबादी पर क्या प्रभाव पड़ने वाला है? बाज़ार की तर्ज पर आज नये–नये कानून बनाये जा रहे हैं 'एक खरीदो एक मुफ्त में पाओ'। भूमि अधिग्रहण को मानो, आर. आर. पालिसी को मुफ्त में पाओ, वनों के बाहरी हिस्से में आओ पट्टा मुफ्त में पाओ, अपनी ज़मीने खाली कर दो कलिंगनगर में टाटा से मुफ्त में आवास, बिजली, पानी, भोजन पाओ–लांजीगढ़ में अनिल अग्रवाल से मुफ्त में पाओ। विकास लो, जल जंगल ज़मीन दो–मुआवजा लो नहीं तो 'आपरेशन ग्रीन हण्ट' के लिए तैयार रहो।

आज वैश्विक स्तर पर चल रही वंचितीकरण की प्रक्रियाओं, असमानता तथा भेदभाव पर टिके ढांचों, निर्मम शासन व्यवस्था जो मुनाफे एवं वर्चस्व के अमानवीय मूल्यों पर टिकी है, के रहते यह उम्मीद करना कि विकेन्द्रीकरण, लोकतंत्र, समानता जैसे तत्व महत्व पायेंगे केवल सदिच्छा हो सकती है हकीकत नहीं। इसे सफल और असफल, विशिष्ट और सामान्य, मजदूर और मालिक, नियंता एवं नियंत्रित के बीच जारी द्वंदात्मक संघर्ष के रूप में समझने की ज़रूरत है। विश्व व्यापार संगठन, अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों तथा इसके 'मानीटर्स' और देश के अंदर मौजूद इनके दलालों ने इस द्वंद को जाने अनजाने में वैश्विक धरातल प्रदान कर दिया है। इसका इस्तेमाल करते हुए ढांचों, प्रक्रियाओं, मूल्यों को बदलने की दिशा में बढ़ना हमारी ज़िम्मेदारी हो गयी है।

कहने का तात्पर्य यह है कि भूमि–अधिग्रहण का यह नया कानून अपने आप में कोई स्वतंत्र या अलग से अस्तित्ववान कोई कृत्य नहीं है वरन् यह जारी प्रक्रियाओं का एक महत्वपूर्ण पहलू मात्र है। यदि इस समझ को आधार बनाकर हम इस कानून का विश्लेषण करेंगे तो निश्चित तौर पर एक सही रणनीतिक पहल

की दिशा तय होगी।

आज ज़रूरत इस बात की भी है कि भूमि अधिग्रहण की अधिकतम सीमा तय हो, कृषि भूमि की न्यूनतम सीमा तय हो, योजनाओं–परियोजनाओं, खनन, स्टील एवं सीमेंट आदि का उत्पादन देश की ज़रूरत के आधार पर हो न कि मुनाफाखोरी के लिए। आज जब दुनिया एक ध्रुवीय बनती जा रही है, दक्षिणपंथी रूझान बढ़ रहा है, विरोध–प्रतिरोध के स्वर कुचल दिये जा रहे हैं, राष्ट्रीय–अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मौजूद लोकतांत्रिक संस्थानों (संसद, न्यायपालिका, अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं) का इस्तेमाल अलोकतांत्रिक कार्यों के लिए किया जा रहा है, वर्चस्ववादी एवं केन्द्रीकरण की प्रवृत्तियाँ बढ़ रही हैं तब भी दुनिया के लगभग सभी भागों में जन आंदोलन इन हालातों को चुनौती दे रहे हैं। यह संघर्ष भले ही आमूल–चूल बदलाव में कामयाब न हो पा रहे हों लेकिन पूंजीवादी वैश्वीकरण की गति को समय–समय पर कम करने में कामयाब रहे हैं। साम्राज्यवाद के नये संस्करण–उदारीकरण–निजीकरण के खगोलीकरण के इस दौर में मुनाफाखोर कंपनियों (देशी–विदेशी) की निगाहें जल–जंगल–ज़मीन समेत प्राकृतिक संसाधनों पर तेज़ी के साथ टिकी हैं वहीं पर इनकी रक्षा के लिए पूरी दुनिया में संघर्ष चल रहा है। आज पूरी मानवता की रक्षा के लिए चलने वाले संघर्ष तथा मुनाफाखोरी के बीच एक सीधा अंतर्विरोध है। इसका समाधान कुछ कानूनी खानापूर्ति या कुछ सुधार आयोग बना देने या कुछ नयी–नयी अंतर्राष्ट्रीय घोषणायें कर देने मात्र से हल होने वाला नहीं। जारी ढांचों, प्रक्रियाओं तथा कायम व्यवस्था और इसके मूल्यों को बदले बगैर क्या किसी परिवर्तनकारी नीति या कानून की गुंजाइश हो सकती है और वह भी ऐसे समय में जब सारी की सारी प्रक्रियायें वैश्विक रूप से एकरूपता लिए हुए हों? और हमारे शासकवर्ग ने राष्ट्र–राज्य की संप्रभुता को गिरवी रख दिया हो?

राजनैतिक अर्थशास्त्र की दृष्टि से विश्लेषण

आज हम देख रहे है कि बड़ी तेजी के साथ राजनीतिक गलियारों, सत्ता संस्थानों, अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों (विश्व बैंक, ए.डी.बी.), कारपोरेट जगत, मीडिया तथा जनसंघर्षों में भूमि और खास तौर

पर भूमि का अधिग्रहण (भूमि की लूट या भूमि का अधिकतम मालिकाना) एक अत्यन्त ही गंभीर मुद्दा बनता चला जा रहा है। उदारीकरण– निजीकरण के खगोलीकरण की प्रक्रियाओं की तेजी ने भूमि के सवाल को कई कारणों से महत्वपूर्ण बना दिया है। एक तो इसलिए कि वैश्विक स्तर पर बार–बार मंदी के दौर तथा वित्तीय बाजार की बेवफाई ने पूंजी की रक्षा के लिए पूंजीपतियों को 'स्टेबिल एसेट्स' की तरफ ढकेला है जिसमें भूमि एक बेहतर विकल्प है; दूसरा विकास की मौजूदा अवधारणा; तीसरा बाजार के विस्तार के लिए शहरों का विस्तार और खाना, पानी, शिक्षा और चिकित्सा को मुनाफा अर्जित करने के सर्वोच्च एजेण्डे में शामिल करने के नाते ज्यादा से ज्यादा जमीनों की जरूरत है साथ ही मुनाफा केन्द्रित विकास के लिए खनिजों, वनों पर नियंत्रण एक फायदेमंद रणनीति है। इन सारे उपक्रमों को आगे ले जाने के लिए ज्यादा से ज्यादा ऊर्जा की जरूरत है जो कोयला, पानी, प्राकृतिक गैस से और अन्ततः परमाणु ऊर्जा के माध्यमों से हासिल होगी। अतएव भूमि समेत सभी के सभी प्राकृतिक संसाधन मुनाफा अर्जित करने के साधन के रूप में इस्तेमाल किये जा रहे हैं जिससे कि विकास, विश्व शक्ति, सभ्य समाज, विकसित समाज का सपना दिखाकर पूँजी अर्थात् कारपोरेट के राज्य का साध्य हासिल किया जा सके। यह सत्ता संस्थानों (देशी–विदेशी) का सुविचारित राजनैतिक अर्थ विज्ञान है जहाँ पर 'राष्ट्र–राज्य' न केवल अपनी सम्प्रभुता गिरवी रख चुका है वरन खुलकर पूँजी की चाकरी में निमग्न है।

ऐसी हालात में प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण के लिए लालायित वैश्विक पूँजी के खिलाफ अपनी जीविका, जल, जंगल, जमीन, पहाड़ लोक–अर्थव्यवस्था, सामूहिकता तथा अस्तित्व की रक्षा के लिए देश के लगभग सभी भागों में जन संघर्ष चल रहे हैं तथा बड़ी से बड़ी कुर्बानियाँ दे रहे हैं। इन जनसंघर्षों के दबाव का यह परिणाम है कि प्राकृतिक संसाधनों और खास तौर पर भूमि की लूट सत्ता–संस्थानों द्वारा वांछित गति प्राप्त नहीं कर पा रही है।

औपनिवेशिक दौर में बने भूमि–अधिग्रहण अधिनियम 1894 में समय–समय पर परिवर्तन करके इसे बार–बार और जन विरोधी बनाया जाता रहा है। पिछले लगभग 20 सालों से इसमें ऐसे परिवर्तनों की कोशिश की जाती रही है जो बाजार की जरूरतों को पूरा करने के लिए इस कानून को ज्यादा से ज्यादा कारगर

बना सके और 'राष्ट्र–राज्य' एक सक्षम फेसिलिटेटर की भूमिका निभा सके।

देश में चल रहे विभिन्न जन संघर्षों ने इस मुद्दे पर अपनी–अपनी सोच और नजरियों को रेखांकित करते हुए तथा संघर्षों के द्वारा अर्जित अनुभवों को आत्मसात करके अपने–अपने दृष्टिकोण को सामने रखा है। देश के तमाम जन संघर्ष– नर्मदा बचाओ आंदोलन, सिंगुर का आंदोलन, पोस्को–वेदांता कंपनी विरोधी आंदोलन, कलिंगनगर तथा काशीपुर के संघर्ष के सबक यह बताते हैं कि कानून निरपेक्ष रूप से अपनी भूमिका नहीं निभाता तथा कानून की सीमाओं में रहकर कानून से इंसाफ की उम्मीद रखकर चलने वाले संघर्ष एक सीमित सीमा तक ही सफल हो पाते हैं।

वास्तव में यह समस्या केवल कानून बनाने, बिगाड़ने से ही सम्बद्ध नहीं है वरन् भूमि अधिग्रहण का सम्बन्ध इस पूरी की पूरी व्यवस्था के साथ जुड़ा है। कानूनी दाँव–पेच की उलझन में उलझना,, एक बेहतर कानून बनवाने की मशक्कत तथा उसे लागू कराने में लग जाना बहुत अपेक्षित परिणाम नहीं दे पाते हैं। निश्चित तौर पर इस तरह के प्रयास महत्वहीन नहीं कहे जा सकते; परंतु कानून बनाने, बनवाने तथा उसे लागू कराने के अनुभव बहुत सकारात्मक नहीं रहे हैं। नये कानून बनते रहे हैं परंतु ऐसे पुराने कानून जो एक सीमा तक व्यापक आबादी के हितों की रक्षा कर सकते थे उन्हें ठन्डे बस्ते में डाला जाता रहा है। भूमि अधिग्रहण कानून का ही यदि हम उदाहरण लें तो पाते हैं कि सत्ता संस्थानों ने इस कानून में कई बार संशोधन किये हैं और राजसत्ता की जरूरतों को पूरा करने के लिए इसकी जन विरोधी धार को और तेज किया गया है। शुरूआती दौर में यह कानून ज्यादा आक्रामक नहीं दिख रहा था; क्योंकि उस वक्त राजसत्ता के निशाने पर जल, जंगल, जमीन, भोजन, स्वास्थ्य, शिक्षा मुनाफा दिलवाने के लिए नहीं थे; परंतु ज्यों–ज्यों पूँजी (बाजार) को इन चीजों की जरूरत महसूस हुई त्यों–त्यों इस कानून को भी बदला गया।

हमारा अनुभव यह बताता है कि जमीन की लड़ाई को कानूनी संरचना के दायरे से बाहर रखना होगा। जो 'राष्ट्र राज्य' अपने कानून की सबसे बड़ी पोथी 'भारतीय संविधान' की उद्घोषणाओं, उद्देष्यों तथा प्रावधानों को मानने से कतराते हुए अब एकदम इंकार कर रहा है, उस राष्ट्र–राज्य से एक अच्छे 'भूमि अधिग्रहण कानून' की इच्छा रखना उसी प्रकार से एक सद्इच्छा हो सकती है जैसी

सद्इच्छा प्रधानमंत्री भूमण्डलीकरण तथा विकास के संदर्भ में 'ह्यूमन फेस' कह कर व्यक्त करते रहते हैं।

कानूनी हस्तक्षेप की इन सीमाओं को समझते हुए यदि यह समझ स्पष्ट हो कि कानूनी बदलावों की लड़ाई संघर्षों को गति देने का साधन हो सकता है– साध्य नहीं, हमें कानूनी मामलों में दखल देना चाहिए। नियमगिरी के मामले में सुप्रीम कोर्ट के हस्तक्षेप के कारण वहां ग्रामसभाओं ने वेदांत कंपनी के प्रस्तावित खनन के खिलाफ अपना मत दिया है। ऐसे भी कई मामले हमारे सामने हैं, जहां पर ग्रामसभाओं की राय को दरकिनार किया गया है। नियमगिरी के साथियों के लंबे संघर्ष की भी इस जीत में एक महत्वपूर्ण भूमिका रही है जिसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। भूमि के मामलों में कानूनी हस्तक्षेप बहुत सावधानी की मांग करता है। इसलिए इस तरह के संघर्षों में जन दबाव, प्रतिरोध तथा विरोध ही कारगर हुआ है। तेलंगाना, तेभागा, पुन्नप्रा व्यायलार, चिल्का झील, गोपालपुर, बोधगया, गंदमारदन के आंदोलनों की जीत कानून की दया या राज्य से प्राप्त संरक्षण के नाते नहीं बल्कि जनता की व्यापक एकजुटता तथा जुझारू पहल की वजह से हुई थी।

फिर भी इस बात को नहीं कहा जा सकता कि जन संघर्षों में किसी एक खास पहल की अहमियत होती है बाकी सब बेकार हैं। परंतु न्यायपालिका एवं संसद की बदलती भूमिकाओं को रेखांकित करते हुए यह देखा गया है कि पी.आई.एल. के माध्यमों से न्यायपालिका द्वारा और संविधान संशोधन के जरिए संसद ने अपने कानूनी रुतबे का इस्तेमाल कई मामलों में जनता के व्यापक हित के खिलाफ किया है। अतएव कानूनी बदलाव जनता के हित में हों; इसकी संभावना कम ही नजर आती है।

हालाँकि जन संघर्षों में सभी प्रकार की पहलों का अपना एक स्थान है। किस पहल को कब ज्यादा अहमियत देनी है यह जन संघर्ष की रणनीति तथा रण–कौशल पर आधारित होता है। फिर भी इस भूमि अधिग्रहण कानून या इसमें संशोधन की मांग पर हस्तक्षेप करते समय हमें अन्य तमाम मुद्दों के साथ ही साथ निम्न मुख्य सरोकारों को गंभीरता से उठाने की जरूरत है:–

- विकास की अवधारणा तथा लक्ष्य क्या है?

- भूमि संबंधी लेन देन की प्रक्रिया, लोकहित के निर्धारण, प्रकृति–मनुष्य के रिश्तों के निर्धारण के तौर–तरीके क्या होंगे? इन प्रक्रियाओं में आम आदमी का क्या स्थान होगा?
- अधिग्रहीत भूमि का मालिकाना किसका होगा?
- अनुपस्थित जमींदारों के बारे में क्या नीति है? तथा भूमि सुधारों का क्या हुआ?

हमें जवाब चाहिए:

- भाखरा बाँध, बोकारो, धनबाद, जादुगुडा, भिलाई, रिहंद बांध, राणा प्रताप सागर के विस्थापितों के मुआवजे तथा पुनर्वास का मामला अभी तक क्यों नहीं हल हो पाया?
- संविधान के पांचवें अनुभाग का लगातार मज़ाक उड़ाते हुए आदिवासियों की भूमि सरकार, कंपनियों, पूंजीपतियों तथा भू–माफियाओं द्वारा कब्जायी गयी/जा रही है? क्यों?
- पेसा कानून को अँगूठा दिखाते हुए मित्तल, भूषण, जिंदल, पोस्को, वेदांत, टाटा जैसी कंपनियां बिना ग्रामसभा की सहमति के कैसे ज़मीनों पर कब्ज़ा करने की तरफ बढ़ रही हैं?
- जिन कंपनियों के एम.ओ.यू. के 5 वर्ष बीत गये और वे काम नहीं कर पाये उन्हें उड़ीसा, झारखंड समेत तमाम हिस्सों से क्यों नहीं भगाया जा रहा है तथा उनसे ज़मीने क्यों नहीं वापस ली जा रही हैं?
- ऐसी खदानें जहां खनन बंद हो चुका है क्या उन्हें सरकारी मानकों के मुताबिक बंद किया गया है? क्या वहाँ वन लगाये गये हैं? अब इन परित्यक्त ज़मीनों का मालिक कौन है? क्या यह पहाड़, खदानें, वन वहां के मूलवासियों को वापस दी जा रही हैं? सूखे झरने, नदियों, वनों की भरपाई के बारे में क्या नीति है?
- कंपनियों/उद्योगों द्वारा आवश्यकता से अधिक हथियायी गयी ज़मीनों के बारे में क्या नीति है?
- बन्द हो गये उद्योगों/उपक्रमों/कारखानों की ज़मीनों के बारे में क्या नीति है?

अतएव आज जरूरत है:–

- भूमि–अधिग्रहण को तत्काल प्रभाव से रोका जाय।
- भूमि–अधिग्रहण अधिनियम की समीक्षा की जाय।
- अभी तक किये गये भूमि–अधिग्रहण पर श्वेत–पत्र जारी किया जाय।

- भूमि संबंधी लेन देन की प्रक्रिया, लोकहित के निर्धारण, प्रकृति–मनुष्य के रिश्तों के निर्धारण के तौर–तरीके क्या होंगे? इन प्रक्रियाओं में आम आदमी का क्या स्थान होगा?
- अधिग्रहीत भूमि का मालिकाना किसका होगा?
- अनुपस्थित जमींदारों के बारे में क्या नीति है? तथा भूमि सुधारों का क्या हुआ?

हमें जवाब चाहिए:

- भाखरा बाँध, बोकारो, धनबाद, जादुगुडा, भिलाई, रिहंद बांध, राणा प्रताप सागर के विस्थापितों के मुआवजे तथा पुनर्वास का मामला अभी तक क्यों नहीं हल हो पाया?
- संविधान के पांचवें अनुभाग का लगातार मज़ाक उड़ाते हुए आदिवासियों की भूमि सरकार, कंपनियों, पूंजीपतियों तथा भू–माफियाओं द्वारा कब्जायी गयी/जा रही है? क्यों?
- पेसा कानून को अँगूठा दिखाते हुए मित्तल, भूषण, जिंदल, पोस्को, वेदांत, टाटा जैसी कंपनियां बिना ग्रामसभा की सहमति के कैसे ज़मीनों पर कब्ज़ा करने की तरफ बढ़ रही हैं?
- जिन कंपनियों के एम.ओ.यू. के 5 वर्ष बीत गये और वे काम नहीं कर पाये उन्हें उड़ीसा, झारखंड समेत तमाम हिस्सों से क्यों नहीं भगाया जा रहा है तथा उनसे ज़मीने क्यों नहीं वापस ली जा रही हैं?
- ऐसी खदानें जहां खनन बंद हो चुका है क्या उन्हें सरकारी मानकों के मुताबिक बंद किया गया है? क्या वहाँ वन लगाये गये हैं? अब इन परित्यक्त ज़मीनों का मालिक कौन है? क्या यह पहाड़, खदानें, वन वहां के मूलवासियों को वापस दी जा रही हैं? सूखे झरने, नदियों, वनों की भरपाई के बारे में क्या नीति है?
- कंपनियों/उद्योगों द्वारा आवश्यकता से अधिक हथियायी गयी ज़मीनों के बारे में क्या नीति है?
- बन्द हो गये उद्योगों/उपक्रमों/कारखानों की ज़मीनों के बारे में क्या नीति है?

अतएव आज जरूरत है:–

- भूमि–अधिग्रहण को तत्काल प्रभाव से रोका जाय।
- भूमि–अधिग्रहण अधिनियम की समीक्षा की जाय।
- अभी तक किये गये भूमि–अधिग्रहण पर श्वेत–पत्र जारी किया जाय।

- भूमि–अधिग्रहण के सवाल पर लोगों की राय ली जाय।
- भूमि–अधिग्रहण के संदर्भ में 'जन मत संग्रह' कराया जाय।
- जमींदारी विनाश अधिनियम, सीलिंग एक्ट, सी.एन.टी. एक्ट–एस.पी.टी.एक्ट जैसे कानूनों को सख्ती से तथा इन कानूनों की मूल भावनाओं के साथ लागू किया जाय।
- संविधान के अनुच्छेद 5 की अवहेलनाओं के दोषियों के विरूद्ध दण्डात्मक कार्यवाही की जाय।

आज भूमि अधिग्रहण दिन–प्रतिदिन की गतिविधि बनती जा रही है। भूमि अधिग्रहण विशेष तथा अत्यावश्यक जन हित के लिए ही होना चाहिए। हमारी स्पष्ट समझ है कि निर्यात, मुनाफा, विलासितापूर्ण जीवन के विस्तार तथा मानव–प्रकृति रिश्तों को नष्ट करने के लिए किसी भी प्रकार का भूमि अधिग्रहण न किया जाय। हमारी स्पष्ट समझ है कि–

(अ) कोई अग्रिम भूमि अधिग्रहण हो उससे पहले–

- जिस प्रकार वन क्षेत्र की न्यूनतम सीमा निर्धारित की गयी है उसी प्रकार कृषि भूमि क्षेत्र की भी न्यूनतम सीमा निर्धारित की जाय तथा वर्ष 2005 में जितनी कृषि योग्य भूमि थी उसे उसी रूप में बरकरार रखा जाय। उसका अधिग्रहण या रूपांतरण न किया जाय।
- अधिग्रहीत की गयी भूमि, वन, पहाड़, जल स्रोतों तथा इसके नाते विस्थापन और पलायन को विवश किये गये लोगों की मौजूदा सामाजिक–आर्थिक हालात, पर्यावरण पर पड़े इसके प्रभाव, विस्थापित लोगों के पुनर्वास–जीविका के हालात पर एक श्वेत पत्र जारी किया जाय। जब तक यह श्वेत पत्र जारी नहीं होता तथा इस पर समाज के विभिन्न हिस्सों की प्रतिक्रिया नहीं जान ली जाती तब तक किसी भी प्रकार का भूमि अधिग्रहण न किया जाय।
- किसानों, भूमिहीनों तथा खेत मजदूरों के हितों की एक सीमा तक रक्षा करने वाले भूमि कानूनों, जमींदारी उन्मूलन अधिनियम, हदबंदी कानून, सी.एन.टी. एक्ट, एस.पी.टी. एक्ट आदि को सक्रिय रूप से लागू करवाया जाय।
- विकास की मौजूदा अवधारणा, भूमि अधिग्रहण कानून के सम्बन्ध में अभी तक प्राप्त अनुभवों के आधार पर इसकी समीक्षा की जाय तथा उस पर जन मत संग्रह कराया जाय।
- अनुपस्थित भू–स्वामियों, जरूरत से ज्यादा अधिग्रहीत की

गयी जमीनों, जमींदारी उन्मूलन अधिनियम, हदबंदी कानून तथा भू–दान के जरिये जब्त की गयी अतिरिक्त भूमि की मौजूदा स्थिति पर एक श्वेत पत्र जारी किया जाय तथा इस तरह की अतिरिक्त भूमि का वितरण भूमिहीनों के बीच किया जाय।

(ब) यदि लोकहित में भूमि अधिग्रहण आवश्यक ही हो तो–

- लोकहित को परिभाषित करते समय परोक्ष या अपरोक्ष रूप से प्रभावित होने जा रहे लोगों को लोकहित तय करने का अधिकार दिया जाय।
- भूमि अधिग्रहण लोकहित में ही किया जाय तथा इसके नियोजन, निर्धारण, संचालन एवं नियंत्रण का अधिकार समुदाय के पास हो तथा इस तरह का निर्णय एक सुव्याख्यायित लोकतांत्रिक प्रक्रिया के तहत किया जाय जिसमें सरकारों, कंपनियों या किसी प्रकार के बाहरी हस्तक्षेप के लिए कोई स्थान न हो।
- भूमि अधिग्रहण लोकहित को ध्यान में रखकर तथा लोकतांत्रिक प्रक्रिया का अनुपालन करते हुए केवल सार्वजनिक क्षेत्र के लिए तथा सरकार द्वारा ही किया जाय।

(स) भूमि–अधिग्रहण की स्थिति में–

चूँकि भूमि समुदाय की जीविका का आधार है। यह सम्पत्ति नहीं धरोहर है। अतएव इसकी क्षतिपूर्ति संभव नहीं है। इसलिए–

- लोकहित में लोकतांत्रिक प्रक्रिया अपनाकर यदि भूमि का अधिग्रहण किया जाता है तो–
  - (अ) अधिग्रहीत की गयी भूमि को वापस पाने का अधिकार भी समुदाय के पास हो। यदि सम्बन्धित योजना, परियोजना भविष्य में अहितकारी, विनाशकारी सिद्ध होती है तो उसे बन्द कराने का अधिकार समुदाय के पास हो।
  - (ब) परोक्ष या अपरोक्ष रूप से प्रभावित लोगों की जीविका, पुनर्वास आदि की समय–समय पर समीक्षा करके इस संदर्भ में समुचित कार्यवाही की जाय।
  - (स) नष्ट हुए वनों, वृक्षों, जल स्रोतों को नये स्थान पर विकसित किया जाय। पर्यावरण विनाश पर पूर्णतया

प्रतिबंध हो।

(द) अधिग्रहीत भूमि का मालिकाना समुदाय के ही पास रहे तथा अधिग्रहीत भूमि के उपयोग के लिए इसे लीज पर ही दिया जाय।

(य) उपयोग न कर पाने (समयबद्ध तथा तयशुदा प्रयोजन के संदर्भ में) की स्थिति में भूमि लैंड बैंक को न देकर अविलम्ब समुदाय को वापस की जाय।

(र) 'लोक हित' तथा लोकतांत्रिक प्रक्रिया को इस तरह परिभाषित किया जाय–

लोकहित–

व्यापक आबादी का हित, जो जरूरत पर आधारित हो, मनुष्य–प्रकृति के संतुलित रिश्तों पर आधारित हो तथा टिकाऊ हो।

इन हितों का निर्धारण, नियोजन, संचालन तथा नियंत्रण व्यापक आबादी के हाथ में हो।

लोकतांत्रिक प्रक्रिया–

लोकहित को ध्यान में रखते हुए ऐसी खुली एवं स्वतन्त्र प्रक्रिया जिसमें (परोक्ष या अपरोक्ष रूप में) प्रभावित होने जा रही बहुसंख्यक अधिवासी आबादी नियोजन, निर्धारण, संचालन एवं नियंत्रण का फैसला सर्वसम्मति से ले। इस प्रक्रिया में किसी प्रकार का बाहरी (सरकारी, गैर–सरकारी, कंपनी आदि) हस्तक्षेप न हो।

सभी प्रकार की जानकारियों,आकलन रिपोर्टों को प्राप्त करने के बाद उपरोक्त प्रक्रिया के तहत कम से कम 3 लगातार बैठकों (जो कि 45–45 दिन के अंतराल पर होंगी) में फैसला लिया जायेगा, जो सभी पर बाध्यकारी होगा तथा लिखित व प्रमाणित होगा।

भूमि अर्जन, पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन में उचित प्रतिकर (मुआवजा) और पारदर्शिता का अधिकार कानून 2013 की मुख्य प्रक्रिया

सरकार द्वारा भूमि अधिग्रहण प्रस्ताव की प्राप्ति

↓

प्रारंभिक अधिसूचना

↓

(किस पर गाज गिरेगी – मतलब किसकी जमीन जायेगी)

↓

सरकार द्वारा 6 महीनों में सामाजिक प्रभाव निर्धारण अध्ययन (जनता पर अपने घर और जमीन छोड़ने पर क्या प्रभाव पड़ेंगे)

↓

विशेषज्ञ समूह द्वारा सामाजिक प्रभाव निर्धारण अध्ययन का मूल्यांकन

↓ ↓ ↓

कलक्टर द्वारा वैकल्पिक भूमि की स्थिति पर रिपोर्ट (बंजर भूमि, बेकार भूमि परियोजना के लिए है या नहीं, इस बारे में रिपोर्ट) → सरकार द्वारा सामाजिक प्रभाव निर्धारण रिपोर्ट में लोक प्रयोजन की वैधता की जांच (जनता के हित में जमीन हड़पी जा रही है या नहीं इसकी जांच) → 80 प्रतिशत प्रभावित परिवारों की सहमति की दरकार (20 प्रतिशत गये भाड़ में)

अधिसूचना (नोटिफिकेशन) → अधिग्रहण की प्रारंभिक अधिसूचना का प्रकाशन → पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन योजना का अधिसूचना के प्रकाशन के बाद 6 महीनों में अंतिम रूप दिया जाना

↓

लोक सुनवाई

↓

पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन योजना के मसौदे तथा प्रावधानों का प्रकाशन

↓

अवार्ड

भूमि अर्जन, पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन में उचित प्रतिकर (मुआवजा) और पारदर्शिता का अधिकार कानून 2013 का संस्थात्मक ढांचा

केन्द्र स्तर पर →	राष्ट्रीय पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन मानीटरी समिति →	जो सभी राष्ट्रीय स्तर की परियोजनाओं पर नजर रखेगी
	{केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों से संबंधित विभागों के प्रतिनिधि तथा विशेषज्ञ शामिल होंगे}	
राज्य स्तर पर →	राजकीय पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन समिति {राज्य सरकारों से संबंधित विभागों के प्रतिनिधि तथा विशेषज्ञ शामिल होंगे} →	राज्य स्तर की परियोजनाओं के विवादों का समाधान
	राज्य सरकार द्वारा कमेटी का गठन	यह तय करेगी कि परियोजना लोक प्रयोजन के लिए उचित है कि नही
	पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन का राज्य आयुक्त	राज्यों में सभी पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन के प्रशासन का प्रमुख
परियोजना स्तर पर →	जिलाधिकारी →	समन्वयक तथा व्यवहारीकरण
	पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन का प्रशासक	परियोजना स्तर पर पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन की जिम्मेदारी
	पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन कमेटी	चुने हुए प्रतिनिधि, समाज के और अन्य एजेंसी के लोग इस कमेटी के सदस्य होंगे

पहले पेट की आग हो ठंडी
फिर अनाज जायेगा मंडी

मुआवजे का झांसा है
किसानों को फांसा है

पहले बचे खेती की जमीन
फिर बजे 'विकास' की बीन

यह कानून जब आयेगा
विस्थापन को और बढ़ायेगा

इस कानून के बस दो आधार
भूमि व्यापार और स्वच्छंद बाजार

PEACE

पॉपुलर एजूकेशन एण्ड एक्शन सेंटर (पीस)
ए–124/6, दूसरी मंजिल,
कटवारिया सराय, नई दिल्ली–110016
फोनः 011–26968121/26858940
ईमेलः peaceact@vsnl.com